दूध लहू ज़हर

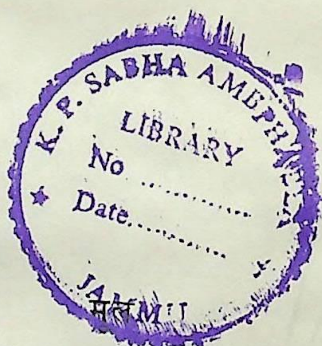


मदन मोहन



दूध : लहू : ज़हर

(दुद्ध—लहू—जैहर का हिन्दी रूपांतर)



[illegible]

प्रो० मदन मोहन

हिन्दी रूपांतर

छत्रपाल

जे. एण्ड. के. अकादमी आफ आर्ट कल्चर एण्ड
लैंग्वेजिज़ जम्मू



प्रथम संस्करण : नवम्बर 1991 प्रतियां 500

मूल्य : 23/- रुपये

आवरण : आशुतोष सप्रू

प्रकाशक : जे० एंड० के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेजिज जम्मू ।

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्स, कोट किशन चन्द जालन्धर ।

'Doodh, Lahu, Zehar' Collection of Dogri Short Stories by Prof. Madan Mohan. Translated by Chhatrapal.

प्रकाशकीय

भाषा के बहुमुखी विकास के लिये अपने आप में एक अलग इकाई 'अनुवाद' का महत्व निर्विवाद है। इसी महत्व के दृष्टिगत हम समय-समय पर अपने पाठकों को श्रेष्ठ साहित्य के भाषानुवाद उपलब्ध कराते आये हैं। प्रस्तुत प्रकाशन, प्रो० मदन मोहन कृत, साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित डोगरी कथा संकलन 'दुद्ध, लहू, जैहर' का हिन्दी रूपांतर हमारे उन्हीं प्रयासों में से एक है।

रचनाकार मात्र कलाकारिता से ही सम्पन्न नहीं होता अपितु कृतियों के माध्यम से उसके पास युगीन प्रामाणिक साक्ष्य भी रहता है। प्रो० मदन मोहन अपनी पीढ़ी के उन विशिष्ट कथाकारों में से हैं जिन्होंने कथ्य, भाषा तथा शैली की दृष्टि से डोगरी कहानी को न केवल पुख्ता धरातल दिया बल्कि विविध आयाम देते हुए समूचे भारतीय साहित्य के साथ जोड़ने में उल्लेखनीय भूमिका निभायी।

कलम में अपनी मिट्टी की गंध रचाते हुए उन्होंने अतीत की ओर प्रवहमान वर्तमान के विकट यथार्थ तथा मानवीय संवेदनाओं के अंधेरों, उजालों को एक सरल सहज बुनावट दी।

'रूपांतर' को मौलिक साहित्य के पहरावे में सज्जित करने की दुष्करता असंदिग्ध है। फिर भी हमारी आशा है कि स्वयं एक मर्मज्ञ कथाशिल्पी होने के नाते रूपांतर कार का यह सशक्त प्रयास आपको कहीं मूल कृति का सा आनन्द देगा और हमें प्रसन्नता। □

—प्रकाशक

अनुक्रम

मादाम.........

इस संग्रह के प्रकाशन के दौरान मुझे बार-बार गुलाब के वे दो फूल याद आते रहे जिन्हें तुम एक दोपहर मेरे टेबल पर रख गईं थीं।

मदन मोहन

25-12-1971

मेरी कहानियां

मैंने अब तक साठ कहानियां लिखी हैं। इनमें से पचास प्रकाशित हो चुकी है। दस अप्रकाशित कहानियां हैं, 'प्याला ज़ैहरा दा', 'तेरे सोह', 'इक फुंग तरेआई दी', 'मेरा नां प्रकाश ऐ', 'बौंगल शाह', 'डोआरी', 'अग्ग', 'नेहरी', 'बादशाह' और 'फुल्ल इयां खिड़दे न'।

डोगरी भाषा में मैंने 1952 के आसपास लिखना शुरू किया। 'टकड़ कियां चढ़ां' मेरी प्रथम कहानी थी जो जी. जी. एम. कालेज की पत्रिका, 'तवी' (अंक 1953) में प्रकाशित हुई थी। मेरा पहला कथा-संग्रह 'खीरला मानु' 1958 में छपा। इस संग्रह में छः कहानियां हैं। सन् 1961 में मेरा दूसरा संग्रह 'चाननी रात' प्रकाशित हुआ। इस में भी छः कहानियां संग्रहीत थीं। फिर सन् 1965 में तीसरा कहानी-संग्रह 'तारें दी लों' छपा। और अब सन् 1971 में 'दुद्द ! लहू ! ज़ैहर !' नामक यह संग्रह डोगरी साहित्य को समर्पित कर रहा हूं। इसमें मेरी बारह कहानियां शामिल हैं।

इन सैंतालीस कहानियों के अतिरिक्त मेरी तेरह अन्य कहानियां डोगरी पत्रिकाओं 'शीराज़ा', 'स्हाड़ा साहित्य' 'नमीं चेतना' 'फुलवाड़ी' और बारह वर्ष पूर्व जम्मू-कश्मीर सरकार द्वारा प्रकाशित हिन्दी मासिक 'योजना' के डोगरी निकुज में छप चुकी हैं। 'उमराव बेगम' 'चार थम्म चरासी बरगे', 'सूरज सधरो दा', 'इक क्रोह उच्चा धर्म', और 'बर्फ' रियास्ती अकादमी द्वारा प्रकाशित 'शीराज़ा' तथा 'स्हाड़ा साहित्य', तथा डोगरी संस्था की त्रैमासिक पत्रिका नमीं चेतना में छप चुकी हैं। 'छिट्टां', 'रानी दिलै दी', 'नशान' 'लच्छमन सांसिया', 'बह्त्तरमीं लाश' और 'सपाहिया दी चिट्ठी सपाहिया

दे नां', कहानियां एफ. एस. ओ. की पत्रिका 'फुलवाड़ी' में प्रकाशित हो चुकी हैं। दो कहानियां 'बाबल मदन मदीन' और 'जिन्दु दे गाहक' पत्रिका 'योजना' के डोगरी निकुंज में छपी हैं।

इन साठ कहानियों के अतिरिक्त मैंने अब तक तीन एकांकी ('नीच,' 'सड़ैन' और 'जुक्कां') डोगरी का प्रथम उपन्यास धारां ते धूड़ां' दो तीन-अंकीय नाटक ('जनौर' तथा 'मेरा मित्र मेरा शत्रु') दस रेडियो नाटक (जिनमें से छः, एक संग्रह 'इक जन्म होर' में संकलित हैं) कुछ व्यंग्यात्मक एवं समीक्षात्मक लेख तथा एक दो निबंध लिखे हैं।

मेरे इस समस्त साहित्य को सामने रख कर कोई भी व्यक्ति अनुमान लगा सकता है कि डोगरी गद्य, विशेषतः डोगरी कथा-साहित्य को 'सशक्त' बनाने में जितना योगदान मेरा है, उतना अन्य किसी लेखक का नहीं।

गत उन्नीस वर्षों में साठ कहानियों के सृजन पर, सच पूछें तो मुझे कोई संतुष्टि नहीं। बल्कि कभी-कभी खेद होता है कि साठ के स्थान पर मैं एक सौ साठ कहानियां क्यों नहीं लिख पाया। यदि मैं पूरे मन से लेखन कार्य में निमग्न रहता तो इतनी कहानियां लिखने की सामर्थ्य मुझ में विद्यमान थी।—फिर भी एक बात स्पष्ट है कि मैं जितनी कहानियां लिख चुका हूं उनसे आधी भी अन्य कोई लेखक नहीं लिख पाया है।

उन्नीस वर्ष पूर्व जब मैंने डोगरी में कथा-लेखन आरम्भ किया था तो डोगरी कहानी साहित्य नाममात्र ही था। चालीस-पचास पृष्ठों का एक कहानी-संग्रह अवश्य उपलब्ध था, लेकिन उसे भी दो-चार लोगों के अतिरिक्त न तो किसी ने देखा हुआ था और न ही पढ़ा हुआ था। इस दृष्टि से देखा जाए और मेरी तथा अन्य कथाकारों की कहानियों को ईमानदारी से परखा जाए तो यह प्रमाणित हो जाता हैं कि डोगरी कहानी को अपनी भाषा के साहित्य में मज़बूत धरातल देने में जितना योगदान मेरा है उतना अन्य किसी का नहीं।

यह सच है कि मेरी सभी साठ कहानियां अमर रचनाओं की श्रेणी में नहीं आतीं। दरअसल प्रारम्भिक दौर की पांच-सात कहानियां इतनी कमज़ोर हैं कि उनके प्रकाशन पर अब मुझे खेद होता है। किन्तु विश्व के किस कथाकार की सभी कहानियां समय की कसौटी पर खरी उतरी हैं!

मेरी साठ कहानियों में यदि कुछ कमज़ोर हैं तो कुछ अन्य कहानियां ऐसी भी हैं जो डोगरी कथा साहित्य की अमर रचनाएं तो हैं ही अपितु उन्हें बड़ी आसानी से भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कहानियों के समकक्ष रखा जा सकता है। इनमें से कुछ कहानियां हिन्दी-उर्दू की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। ऐसी नौ कहानियों का हिन्दी अनुवाद (अनुवादक प्रोफैसर सुभाष भारद्वाज) 'बिन मोती की सीप' संग्रह में छप चुका है।

अब तक की अपनी कहानियों में से यदि मुझे अपनी पसन्द की कहानियां चुनने को कहा जाए तो उनका चयन कुछ इस प्रकार होगा—'चाननी रात' संग्रह की 'ण्हाड़ी कां' 'जल्ली', 'चाननी रात' और 'चार बुड्डे चार परियां'। 'तारें दी लो' संग्रह की 'नंदशाह दी बिल्लो', 'मुन्स मरावी', 'रानी जी' 'सिप्पी बिजन मोती', 'ढोंदा अम्बर, उलरदी बांह' और 'मुंडु' कहानियां। 'दुद्द ! लहू ! जैह्‌र' संग्रह की 'पत्थरी', 'मेरी गली दा पाप', 'ओ', 'कूक', 'माफी', 'इक लमकदी लोथ' और 'शैंकरी दा बुड्डा' कहानियां। एक अन्य कहानी 'उमराव बेगम' भी इसी श्रेणी में आती है जो 'शीराज़ा' के गालिब अंक में प्रकाशित हुई थी। मेरी यह अठारह कहानियां ऐसी रचनाएं हैं, जिन्हें डोगरी भाषा कभी भुला नहीं सकती, ऐसा मेरा विश्वास है।

'दुद्द ! लहू ! ज़ैहर !'' मेरी सातवीं पुस्तक है। इसके प्रकाशन से मुझे लग रहा है कि जैसे मेरे साहित्यिक जीवन की यात्रा का पहला पड़ाव आ गया है। अब कुछ देर विश्राम !

और फिर पुनः नव-उत्साह, नई लगन के साथ अगली मंज़िलें पार करने के लिए गतिशील हो जाऊंगा—अपने अन्तर्मन में इस संकल्प को दोहरा रहा हूं।

---मदन मोहन
15—12—1971

पत्थरी

कुछ देर गर-र-र की आवाज़ के साथ पंखा रुक गया।

दरवाज़े के सामने से टिप-टिप करती नर्सें सर्र से गुज़र गईं।

साथ वाले मैर्टनिटी वार्ड से उठी एक चीख हवा की छाती को चीरती हुई सैकड़ों बिस्तरों को झकझोर गई।

'कौन मर गया है ?' बीरो ने क्षण भर आंखें खोल कर मरियल आवाज़ में पूछा।

उसने कांपती नज़रों से बीरो की तरफ देखा। बीरो ने आंखें बन्द कर ली थीं। उसकी मैली जीभ उसके मोटे पपड़ाए ओंठों पर फिर रही थी। चेहरे पर पुन: वही घातक पीलापन छा गया था। बड़ी कठिनाई से सांस लेते समय उसकी छाती आधा इंच भर ऊपर उठती और एक दो क्षण स्थिर रह कर फिर नीचे खिंच जाती। उसकी उठती-खिंचती छाती देखकर उसे उस धौंकनी की याद आ जाती है जिसके हत्थे पर कोई उनींदा लुहार कभी-कभार हाथ रख दे और ठंडी पड़ती भट्टी के मुंह से उड़ती राख को देखकर तनिक सजग होने का प्रयास करे।···लेकिन फिर नींद के ज़ोरदार हमले से लाचार होकर धौंकनी में हवा भरना भूल जाए।

वह अपने बिस्तर से उठी। खिड़की की जाली से बाहर झांका। आकाश पर काले बादल घुमड़ रहे थे। आसमान के नीले विस्तार पर बादलों की दौड़ देखकर उसकी छाती में एक दमघोटु धुआं उठने लगा। वह खिड़की से हट गई। उसने बीरो के पलंग के पास पड़ी सुराही से एक गिलास पानी लिया। बीरो की

जीभ जैसे मुंह से बाहर आ गई थी। उसने बूंद-बूंद करके उसकी जीभ पर पानी छिड़का। अकड़ी हुई जीभ तनिक पानी पाकर पुनः पपड़ाए होठों को सहलाने लगी। 'वीरो ! पानी —'

'पानी !' वीरो ने फौरन मुंह खोल दिया। उसने एक चम्मच पानी वीरो के मुंह में डाला। वीरो की छाती की धौंकनी फिर चलने लगी।

'कौन मर गया है ?' पल भर आंखें खोल कर वीरो ने डूबती आवाज़ में पूछा। मानो वह गज़ भर की दूरी से नहीं, कई फुट गहरे कुएं से बोल रही हो।

उसने वीरो की बात का उत्तर नहीं दिया। चुपचाप अपने पलंग पर बैठ गई और गर्दन उठा कर, लोहे की लम्बी पाईप से लटकते पंखे को देखने लगी। कितनी ही देर वह शून्य-दृष्टि से पंखे के परों के नीचे लगे कील गिनती रही और फिर थक हार कर बिस्तर पर लेट गई। आंखें बंद करने से पहले उसने घड़ी देखी। चार बजे थे फिर एक नज़र सामने दरवाज़े पर डाली। नर्सें किसी औरत को ट्राली में डाल कर बाहर ले जा रही थीं। उसने करवट बदल ली।

'कितनी कमज़ोर हो गई है बेचारी ! पांच रोज़ पहले जब अभी आप्रेशन होना था तो कितना अक्खड़पन था, कितना उद्यम था इसकी बातों में। मिलने आई वह रोने लगी थी तो उसे डपट दिया था : 'तू अब बच्ची नहीं रही। वैसे तो मुझे कुछ होगा नहीं, और अगर आयु खत्म हो ही गई तो सिर्फ टसुवे ही न बहाती रहना। समझदार बन कर घर-गृहस्थी सम्भालना। गांव में हमारे सज्जन कम और दुश्मन ज्यादा हैं।

'इधर-उधर की बातों पर कान मत धरना। चांची सैंती ने दो 'टुप्पे' उड़द उधार लिए हुए हैं, मांग लेना। सभी को मना कर देना कि मुझे देखने मत आएं। बिना मतलब किराया-भाड़ा देते रहेंगे और काम का नुक्सान अलग से होगा। यदि आयु शेष हुई तो स्वयं किसी रोज़ आ जाऊंगी घर। रामसरन से कहना कि उस निट्ठले बूढ़े को, जो सारा दिन खाट तोड़ता रहता है और सेर भर तम्बाकू फूंक डालता है, आजकल में 'डींगा-अम्ब' भेजे। घर में जवान लड़की कुंआरी बैठी है और उसे कोई चिन्ता ही नहीं है। ऐसा न हो कि वह पंचगिरी करता रहे और लड़के वाले कहीं और हां कर दें।'

बहू रात उसी के पास रहना चाहती थी लेकिन उसने दोपहर को ही वापिस भेज दिया।

'यह निट्ठला बूढ़ा कौन है बीरो ?' बहू के चले जाने पर उसने पूछा था तो वह ठहाका लगा कर कहने लगी, 'मेरा घर वाला कुड़िए। दिन भर उलटी सीधी हरकतें करता रहता है। है तो अभी पचास का लेकिन सठिया गया है। क्या मज़ाल जो किसी काम को हाथ लगा जाए। इधर से उठता है तो उधर जा पसरता है। दिन भर यही काम है उसका। सिरे का 'हड्डहराम' है। यह मैं ही थी कि निबाह गई। कोई और होती तो इसके सिर पर राख डाल कर चली गई होती। वैसे भई, देखने में बड़ा समझदार और भलामानस लगता है। बातों में बड़े-बड़े पंडितों के कान कुतरता है। जहां भी जाता है लोग सिर-आंखों पर बिठाते हैं, उसे पंच बनाते हैं। लेकिन ऐसी 'पंची' किस काम की, जिससे घर का कुछ न बने-संवरे। उसके बच्चे जनने थे, जन दिए। वरन् ऐसे मर्द के सिर पर खाक डालना भी मैं पाप समझती हूं, एक दिन भी ढंग का नहीं गुज़रा। शुरू से ही ईंट और घड़े वाला वैर रहा। जैसे तैसे तीस साल काट ही दिए। अब शायद छुटकारा मिलने का समय आ गया है। घर से निकलने लगी थी तो चौपाल पर बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। मुंह से इतना नहीं निकला कि तेरे साथ चलता हूं। उलटे, मुआ कहने लगा कि जाती हो तो जाओ, पर याद रखना तेरे पास कोई नहीं फटकेगा। फसल के दिन जा रहे हैं और इसे अस्पताल की सैर सूझी है। जहां इतने साल तकलीफ सही है. वहां दो तीन महीने और नहीं काट सकती ? ऐसा है और मेरा बुड्ढा ! एक होता है पति और दूसरा होता है पति 'देव'। मेरे वाला पाजी पति 'देव' है।

'सल्लनी' की रहने वाली है बीरो। दस साल से पेट में रसौली है। आठ रोज पहले जब वह साथ वाले कमरे में आई थी तो अपने बेड पर बैठी बीरो नर्सों को डांट रही थी ''कितनी बेरहम हो तुम ! भगवान् का कोई खौफ नहीं तुम्हें ! घर पर छोटे-छोटे बच्चे छोड़ कर आई हूं और इन्हें आजकल करते-करते दस दिन हो गए हैं। यदि आप्रेशन नहीं करना तो भी बता दो। मैं मेले में तो आई नहीं, कल ही अपनी गठरी उठा कर चली जाऊंगी। जहां दस साल रसौली उठाए हुए गुज़ार दिए, वहां कुछ साल और सही !' जब बुड़बुड़ाती नर्सें कमरे से बाहर चली गईं तो वह अस्पताल के डाक्टरों को कोसने लगी, 'रिश्वत दूं तो कल ही आप्रेशन कर दें। पर मेरे पास तो सिर्फ पांच रुपये हैं। कैसे इनके मुंह में हड्डी डालूं ?'

फिर उसने उसकी तरफ देखा था। इस खाट पर मत लेटना, कुड़िए! यह मौत का बिस्तर है। अभी कल रात ही हीरानगर की एक लड़की ने इस पर प्राण त्यागे हैं। उसके घरवाले ने बड़ा चढ़ावा चढ़ाया इन कसाइयों को। नहीं बच सकी। तीन छोटे-छोटे बच्चे छोड़ गई। मेरी मानो तो किसी को पांच-दस देकर कोई और बिस्तर देख लो।'' यह कह कर बीरो ने उसके पति की ओर देखा था। और जब अपनी बात का उत्तर नहीं मिला तो वह बिस्तर पर लेट गई थी।

○○

उसने आंखें खोल कर कलाई घड़ी देखी। अभी साढ़े चार ही हुए थे। उसने बीरो की तरफ देखा। वह धीमे-धीमे सांस ले रही थी। उसकी दृष्टि पंखे पर पड़ी। वह पूर्ववत् रुका हुआ था। उसने दरवाज़े की ओर देखा। दो नर्सें खिलखिलाती हुईं सामने से गुज़र गईं। सिरहाने से सिर उठा कर उसने खिड़की के बाहर झांका। आकाश पूर्णतः मेघाच्छन हो गया था। हवा रुकी हुई थी। उसका जी घबराने लगा। उसने कमरे के बाहर जाने की सोची मगर उठी नहीं और आखें मींच लीं। अब उसके दिमाग में कहीं दूर से अनु, नीटू और कालू कीं 'मां-मां-मां' की गुहार मचातीं, लड़ती-झगड़ती, खेलतीं, घर की सीढ़ियां चढ़ती-उतरती भोली शक्लें बाहर झांकने लगीं। अभी दस दिन ही हुए हैं उसे घर से आए हुए लेकिन वह बच्चों बिना इस कद्र उदास हो गई है मानो उनके चेहरे देखे बरसों बीत गए हों। उसे याद आया, जब वह घर से निकल रही थी तो कालू सोया हुआ था, अनु स्कूल गया हुआ था और नीटू ने उसकी टांगों से लिपट-लिपट कर एक ही रट लगा रखी थी, 'मैं भी साथ जाऊंगा मामा। तुम कहां चली हो!'

उसने नीटू को बांहों में भर लिया था। उसे कस कर छाती से लगाते हुए, रसोई साफ करती सास की तरफ देखा था! 'मैं अभी आई। तेरे लिए गैस वाला गुब्बारा लेती आऊंगी। तुम दादी अम्मा के पास खेलो।' नीटू उसकी गोद से उतर गया और 'गैसी'—गुब्बारा 'गैसी' गुब्बारा कहते हुए आंगन की ओर भाग गया था। उसने रोती आंखों से एक बार फिर सास की तरफ देखा था। सास उसे रोष भरी दृष्टि से देख कर नीटू का मुंह धोने लग पड़ी थी। उसने आंसू पौंछ कर अपने कपड़ों वाला थैला उठाया था और घर से बाहर

निकल आई थी। सड़क पर टैक्सी रोके उसका पति उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

'तेरे आने के बाद कालू संभाले नहीं संभल रहा था। दो दिन तो उसने दूध तक नहीं छुआ। पर अब खेलता रहता है। कभी-कभार तेरा नाम लेता है तो अम्मा छिड़ जाती है, वही पुरानी बातें। रोगी पल्ले पड़ गई, बच्चे बड़े हो जाते तो करवा लेती आप्रेशन। मेरी कभी मानी ही नहीं। जहां जी हुआ; बैग उठा कर चलते बने। यदि कुछ हो गया तो कौन पालेगा इन दुधमुंहों को ! जब से ब्याह कर लाए हैं, यही सब देखने को मिला है। मेरी कोई उम्र रही है बच्चे पालने की ! सोचा था कि घर सम्भालेगी तो इस बार बद्रीनाथ धाम हो आऊंगी। पर इन कुलच्छनियों ने क्या घर सम्भालना है !... और ऐसी ही सैंकड़ों बातें। लेकिन एक बात है, ज़बान की कड़वी सही, मगर दिल की बुरी नहीं मां। जब भी तेरे लिए खाना लाने लगता हूं तो अम्मा के आंसू नहीं थमते ! 'जितना पैसा लगता है लगाओ और किसी तरह उसकी तकलीफ हटाओ। मेरी एक बात याद रखना बेटे, जैसी ले गए हो, वैसी ही वापिस नहीं लाए तो मैं तुझे नहीं बख्शुंगी !...रोज़ दोपहर शाम तेरे पास आने के लिए तैयार हो जाती है पर घर के झंझटों के कारण निकल ही नहीं पाती सारा दिन रोटी-कपड़े और बच्चों के रोने-झींकने में ही चला जाता है। रात को कालू सोने नहीं देता। मुझे तो उस बेचारी पर दया आती है। तुम क्या आईं, घर का सारा क्रम ही बिखर गया। कहीं कोई ऐसा दवा मिल जाए जिससे बिना आप्रेशन ही पत्थरी निकल जाए।''

लेकिन डाक्टर कहते हैं, बिना आप्रेशन पत्थरी नहीं निकल सकती। एक्सरे की रिपोर्ट थी कि बायें गुर्दे में दो पत्थर हैं। जिस सर्जन ने आप्रेशन करना है वह छुट्टी पर है। उसके लौटने पर ही आप्रेशन की तारीख का पता चलेगा। 'कैसी विपता आ पड़ी है। सांसों में मौत की सड़ांध घुल गई है।' जाने क्यों उसे लगता है कि गुर्दे की पत्थरी उसका काल बन कर आई है। 'वह मोड़ आ पहुंचा है जहां जीवन की लौ समाप्त हो जाती है और मृत्यु का अंधेरा शुरू होता है।'

वह अपने हाथोंकी रेखाएं देखती। ''क्या मात्र अट्ठाईस वर्ष ही जीना था मैंने ? नहीं··नहीं मैं अभी नहीं मरूंगी। अभी मैंने किया ही क्या है ? देखा ही क्या है ?'' कैसी अजीब बात थी। घर के कलह-क्लेश से दुःखी होकर उसने

कई बार सच्चे मन से मृत्यु की कामना की थी।—और अब, जब मृत्यु पास खड़ी दिखाई देती थी तो उसका हृदय कांप-कांप जा रहा था। लाखों दुःख हों, पर जीवन फिर भी जीवन है। दुःख सुखों में बदल सकते हैं, आंसू हंसी का रूप ले सकते हैं पर यदि कोई जीवन-संघर्ष से हार कर एक बार मृत्यु के अनन्त-असीम अंधकार में कूद जाए तो शून्य के अतिरिक्त और क्या मिल सकता है? सिरफिरे होते हैं वे लोग जो आत्महत्या करते हैं। जीवन-ज्योति को अपने हाथों बुझा देना और अंधकार का वरण करना पागलपन नहीं तो और क्या है? वह सोचती।

परसों शाम वे खाना देने आए तो बीरो की बात याद करके, कि उसका पलंग मौत का बिछौना है, उसकी आंखें भर आईं। बच्चे की तरह बिलख पड़ी, 'देखो, अगर मैं न रही तो तुम्हें मेरी सौगन्ध मेरे बाद बच्चे सम्भाल लेना। ऐसा न हो रात ग्यारह-ग्यारह बजे तक घर न आओ और वे 'मां-मां' चिल्लाते बेहाल होते रहें।'

उसकी बात सुन कर उसका पति हंस पड़ा था। 'पगला गई हो तुम।' उसने हंसते-हंसते इतना ही कहा था और कमरे से बाहर चला गया था। 'वे कमरे से बाहर चले गये थे। जरूर उनकी आंखें भर आई होंगी।'

'सचमुच वह मूर्ख है।' आप्रेशन अभी हुआ नहीं। जाने होगा भी या नहीं। और वह मरने-जीने की बातें सोचने लग पड़ी है। वह कभी इतनी डरपोक नहीं थी: उसे जीवन में आस्था रही है। विकट परिस्थितियों में भी उसने हौंसला नहीं छोड़ा। जीवन के उतार-चढ़ाव देख कर कई बार वे मर्द होकर भी हिम्मत हार बैठते तो वह बढ़ कर उन्हें सहारा देती। उनके भीतर आशाओं की नई लौ जगाती। लेकिन आज वह पहले जैसी नहीं रही। उसका धैर्य, हौसला, आशाओं की वह पिटारी जाने कहां खो गई।

वह बिस्तर पर लेटी अकारण रोने लगती, बिना कारण डर जाती। रोज आधी रात को उसकी नींद टूट जाती। पूर्णतः होश में होते हुए भी उसे वहम होने लगता कि उसका पलंग हिल रहा है। कोई दूर खड़ा उसे पुकार रहा है। और फिर उसे लगता, उसका सिर बिल्कुल ठंडा हो गया है और उसके भीतर से कोई चीज़ निकल कर आकाश के अन्धकार में उड़ गई है। वह सकपका कर बिस्तर से उठ जाती। पास के बिस्तर पर मुरदे की तरह लेटी बीरो को देख कर उसके रहे-सहे होश भी उड़ जाते। कांपती टांगों से उठ कर वह दरवाजा खोलती और

कमरे से बाहर निकल जाती। ज़नाना वार्ड पार करके वह गुफा की तरह फैले हुए लम्बे बरामदे में आ जाती। कुछ देर गहरे सांस लेकर वह बरामदे के एक कोने में जा खड़ी होती। बरामदे के दोनों छोरों के बीच की दूरी आंखों से तय करती। रात के अन्धेरे से संघर्ष करते हजार वाट के बल्ब। स्पेशल कमरों के किवाड़ों पर झुलते-हिलते पर्दे। अन्दर बाहर डोलती परछाइयां। एक लम्बा मौन। और फिर उस मौन को बींधती कोई चीख, किसी के रोने की आवाज़, किसी बच्चे की चीख ......। कैसी जगह है ? कुछ सुनाई देता है तो बस चीख-पुकार, करुण विलाप।

मौत मुट्ठियां भींच कर पीछे पड़ती है तो आदमी हस्पताल की ओर दौड़ता है। डाक्टर डांटते हैं, नर्सें डपटती हैं। लेकिन आदमी सब सह जाता है। देवी-देवता मान कर उनसे अनुनय-विनय करता है। वास्ते देता है कि उसे चंद सांसें और मिल जाएं। मौत के कगार पर खड़े बूढ़े बड़े कठिन आप्रेशन करवा लेते हैं ताकि उनके समाप्त प्राय: जीवन के कुछ दिन बढ़ जाएं और वे इस संसार को, जिसे साधु-संत एक छलावा एक माया कह कर जंगलों में डेरा डालते हैं, कुछ और देख लें, भोग लें। यह माया, रंग रूप की जादूनगरी, रंगबिरंगे फूलों की खुश्बू, बादलों के सफेद फाहे, तारों के टिमटिमाते दिये, ठंडी मीठी ऋतुएं, रिमझिम फुहारें, लाखों गीत, कहानियां, हंसी, जवान और स्वस्थ शरीरों के ठाठें मारते दरिया। यदि यह सब माया है तो सत्य क्या है। यदि मौत एक सत्य है तो जीवन भी एक अटल सत्य है। एक अधिक सशक्त सत्य, अधिक पल्लवित होने वाला सत्य, जिसके सामने मौत सदा परास्त होती आई है। मौत क्या है ? एक नाकारा कंकर, एक छोटी सी पत्थरी, जो चलते जीवन के पैरों में अचानक चुभ जाती है। जीवन पल भर स्थिर हो जाता है। पत्थरी की चुभन से संज्ञाहीन हो जाता है। कहते हैं मौत आ गई। लेकिन फिर नई शक्ति के साथ, नया रूप लेकर जीवन जाग पड़ता है और उसकी नई यात्रा शुरू हो जाती है।

वह यह सब सोचती तो उसके मन पर छाया अन्धेरा छंटने लगता। अन्तर्मन में एक लौ जल उठती। जीवन के प्रति उसकी आस्था पुन: जाग उठती। पर तभी कहीं से एक चीख उभरती, रोने चिल्लाने की आवाज़ सुनाई देती तो पल भर पहले जागृत हुआ विश्वास टूटने लगता। वह कांपने लगती, अन्धेरा घनीभूत होने लगता। मौत वाली पत्थरी एक गगन चुम्बी काले पहाड़ का रूप धारण कर लेती। 'नहीं, नहीं, मुझे जीना है। वह जल्दी-जल्दी ज़नाना वार्ड की तरफ दौड़ने

लगती । शांति नर्स उसे अपनी तरफ आते देख कर हंस पड़ती —'आओ, बैठो ।' वह धड़कते दिल से उसके पास आ बैठती । शांति नर्स वार्ड में जन्में नवजात शिशुओं के बारे में बातें करने लगती । वह देर तक उसके पास बैठी रहती । घबराहट कम होती, माथे का पसीना सूखता तो अपने कमरे में आकर बिस्तर पर ढेर हो जाती ।



उसने पुन: आंखें खोलीं । घड़ी देखी । 'अभी उनके आने में पूरा एक घण्टा है । दोपहर को कह गए थे कि आज नीटू को जरूर साथ लाएंगे ।' वह छत घूरने लगी । अभी तक बिजली नहीं आई है । उसने बीरो की तरफ देखा । बीरो की जीभ हिल रही थी । उसने उठ कर घड़े से एक गिलास पानी लिया, 'बीरो, बीरो ।'

'पानी !' बीरो ने आंखें खोलीं । उसने चम्मच से उसके मुंह में पानी डाला ।

'वह नहीं आया न ?' बीरो ने क्लान्त स्वर में पूछा ।

'वह कौन ।' उसने बीरो से कहा ।

'वही, जिसने तीस साल पहले मेरी डोली लाई थी । मैं इधर तरस-तरस कर मर जाऊंगी पर उसे अपनी 'पंची' से फुर्सत नहीं मिलेगी ।' यह कह कर बीरो ने फिर आंखें बन्द कर लीं ।

बीरो की बात पर उसकी आंखें भर आईं । उसने खिड़की से झांका । बादलों के कारण रात-सी लग रही थी । धीरे-धीरे वह अपने बिस्तर पर लौट आई । सिर कुछ भारी हो रहा था । वह कुछ देर सोना चाहती थी । उसने करवट बदली और सो गई ।

उसकी आंख लगे कुछ देर ही हुई थी कि पास वाले वार्ड से किसी औरत के रोने की आवाज़ आई । उसकी नींद टूट गई । उसने बीरो की तरफ देखा । बीरो की आंखें खुली थीं ।

'कौन मरा है ?'

'पता नहीं ।'

'ज़रूर कोई मरा है।' बीरो ने आंखें बन्द कर लीं।

वह बिस्तर से उठी और कमरे से बाहर चली गई।

अब वह बरामदे के कोने में खड़ी बाहर को खुलने वाले दरवाज़े के शीशों से देख रही थी।

बाहर ज़ोरों की आंधी चलने लगी थी। धूल-मिट्टी उड़ कर अस्पताल के अन्दर आने लगी। सामने लगे सरु के वृक्ष दोहरे होते जा रहे थे। बायीं तरफ के आम के पेड़ का एक मोटा डाल टूट गया। उस पर बैठी चिड़ियां इधर-उधर उड़ गईं। उन चिड़ियों में से रंगीन दुम वाली दो चिड़ियां बिजली की कांपती तारों पर आ बैठीं। पास ही, खम्भे पर लगा बल्ब हिल रहा था।

शाम का अन्धेरा गहरा होता जा रहा था। आंधी का ज़ोर उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। यकायक बिजली चमकी। बादलों में गम्भीर गर्जन हुआ, मानो कोई पहाड़ फट गया हो। धरती कांप उठी। सामने खम्भे वाला बल्ब जल उठा। बिजली आ गई। पर यह क्या हुआ। बिजली की तारें जुड़ गईं। एक तड़तड़ाहट के साथ चिंगारियां छूटने लगी। तारों पर बैठी एक चिड़िया उड़ गई। दूसरी उड़ने से पहले ही वहां चिमट गई। चिड़ियां चीं-चीं कर रही थी और उलटी लटक गई थी। फिर आखिरी बार चीं-चीं कर वह ज़मीन पर आ गिरी।

उसकी सारी देह ठंडे पसीने से भीग गई।

डूबती सांसों से वह कमरे की ओर चली। दो कदमों के बाद ही उसे शांति नर्स मिल गई। 'आ कुड़िए, तुझे एक मज़ेदार बात सुनाऊं।' शांति ने उसे बांह से पकड़ लिया। परसों एक ही उम्र की दो सहेलियां यहां दाखिल हुई थीं। दोनों की शादी का पहला साल था। दोनों को पास-पास बिस्तर मिले। आज सुबह एक को प्रसव-पीड़ा शुरू हुई तो दूसरी भी तड़पने लगी। सारी दोपहर दोनों मरदूद चीखती-चिल्लाती रहीं और अभी पांच मिनट पहले, दोनों के हां एक दो पल आगे पीछे, बेटे पैदा हुए हैं। ऐसी दोस्ती कभी नहीं देखी भई।'

उसके चेहरे पर एक बारीक मुस्कान फैल गई। शांति नर्स हंसती-हंसती चली गई।

वह आगे बढ़ी। अचानक उसके कानों में 'मां-मां' का परिचित स्वर पड़ा। उसने आंखें उठा कर देखा। नीटू की उंगली पकड़े वे आ रहे थे। वह उनकी तरफ भागी। नीटू को उठा कर छाती में भींच लिया। पागलों की तरह उसका चेहरा चूमने लगी।

'क्या कर रही हो ? लोग देखेंगे।' उसके पति ने हंसते हुए उसे मना किया। —'आ रहा था, कि रास्ते में डाक्टर मनसोत्रा मिलीं। पूछने पर पता चला कि सर्जन अभी छुट्टी से लौटा नहीं। साथ ही उसने कहा है कि आजकल मौसम ठीक नहीं है। आप्रेशन सर्दियों में करवाएं तो ठीक है। मैं भी यही चाहता हूं। सुबह वार्ड की डाक्टर से पूछ कर घर चले जाएंगे।'

उसने क्षण भर पति की ओर देखा और नीटू को उठा कर वार्ड में आई। नीटू बार-बार पूछ रहा था। ''मां-मां, तुम मेरे लिये गैंस वाला गुब्बारा क्यों नहीं लाई ?'

कमरे के दरवाज़े के पास एक रोबदार बुज़ुर्ग ने आकर पूछा, ''सल्लनी की बीरो, जिसका रसौली का आप्रेशन होना था, किस वार्ड में है ?'

उसने गौर से बूढ़े की ओर देखा। उसने बड़ी-सी पगड़ी बांध रखी थी। खादी का कुर्ता और चूड़ीदार पहना हुआ था। हाथ में लाठी थी। देखने में सचमुच सरपंच लगता था बीरो का वुढ्ढा।

'आइये. वह अभी-अभी आपको ही याद कर रही थी।' तनिक मुस्करा कर उसने बूढ़े से कहा। कमरे में आते ही उसे पंखे की घरघराहट सुनाई दी। बिजली आ चुकी थी। उसने बटन दबाया। कमरे में रोशनी हो गई।

'वह रही आपकी बीरो।' उसने उंगली से इशारा किया।

बूढा आगे बढ़ा। उसने बूढ़े की तरफ स्टूल सरकाया। स्टूल खींच कर बूढ़ा पलंग के पास बैठ गया।

'बीरो। हे बीरो'—बूढ़ा बड़ी दर्द भरी आवाज़ में बीरो को पुकार रहा था। 'कैसा सूनापन छोड़ आई हो घर में। आंखें तो खोल।...ये आंखें क्यों नहीं खोल रही ?' बूढ़े ने घबरा कर उसकी तरफ देखा।

उसने नीटू को गोद से उतारा और जल्दी से बीरो के बिस्तर के पास आई। जल्दी से घड़े से पानी लिया।

'बीरो, पानी।'

लेकिन बीरो नहीं बोली। पानी का नाम सुन कर भी उसकी जीभ नहीं हिली। आंखें पूर्ववत् बन्द रहीं।

धौंकनी से हवा निकल चुकी थी।

लुहार गाढ़ी नींद में खो चुका था।

भट्ठी बिल्कुल ठंडी हो गई थी।

बूढ़ा उठ पड़ा। छत्त की तरफ देखते हुए बोला, 'कमजात धोखा दे गई।'

और वह बुत्त बनी बीरो की बाहर निकली जीभ की तरफ देखती जा रही थी। अचानक उसके हाथ से गिलास छूट गया। कांपती टांगों से वह बाहर को दौड़ी। उसके पीछे-पीछे नीटू को उठाए उसका पति भी भागा।

वह बरामदे के कोने में खड़ी शीशे से बाहर देख रही थी। बाहर आसमान गरज रहा था।

'तुम्हें क्या हो गया है?' उसके पति ने नीटू को नीचे उतारते हुए पूछा।

उसने बेहद उदास नजरों से पति की तरफ देखा।

''कुछ नहीं! मुझे आज ही घर ले चलें।' उसने उसकी छाती पर सिर टिका दिया और फफक-फफक कर रोने लगी। □

मेरी गली का पाप

आकाश पर कोलतार पुता हुआ है। अधिकांश स्थानों पर मोटे-मोटे धब्बे हैं और बीच-बीच में रिसाव-सा हुआ लगता है। आकाश के नीचे सेठों की गली है। गली देखकर किसी मृत और उलटे पड़े कनखजूरे की याद ताज़ा हो आती है जिसके दाएं-बायें खड़े मकान उसकी खड़ी टांगों जैसे प्रतीत होते हैं। गली की छाती पर बल्ब की पीली रोशनी पड़ रही है। यह रोशनी एक स्थान पर पहुंच कर अंधेरे के मुंह में समा जाती है। उसके आगे अंधेरा हैं, आगे और अंधेरा है और उस अंधकार के बाद वह ऊंची दीवार है जिसे राज सिंहासन बनाकर गहन अंधकार विराजमान है—जिस से बहती गली के आगे रुकावट आ गई है।

जिस स्थान पर गली शुरू होती है, वहां बिजली का एक खम्भा है। ...उस खम्भे से पीठ टिकाए, एक टांग पर वह ऐसे खड़ा है मानो भूत-प्रेत वश में करने के लिए कोई तांत्रिक श्मशान में समाधिस्थ खड़ा हो।

उसने बेहिसाब पी रखी है। नशे से भारी उसकी आंखें यदि पल भर को खुलती भी हैं तो वह डोलती नज़रों से गली के भीतर देखने लगता है। उसकी भटकती निगाहें ज़र्द रोशनी पर फिसलतीं अंधेरे तक पहुंचती हैं, थोड़ा और आगे बढ़ती हैं। फिर दीवार की मोटी ईंटों से सिर टकरा कर लौटने लगती हैं। वापसी पर वे घरों की खिड़कियों की ओर लपकती हैं। बन्द किवाड़ों से टकराती हैं। और हारकर उसके पैरों पर आ गिरती हैं। कुछ देर वहां विश्राम करती हैं। फिर निगाहें ऊपर उठती हैं। चींटियों की तरह सरसराहट पैदा करतीं उसकी टांगों पर चढ़ने लगती हैं। चढ़ते-चढ़ते उसकी छाती पर पहुंच जाती हैं।

उनसे घबरा कर वह चेहरा ऊपर उठा लेता है। पल भर बल्ब की ओर देखता है, और फिर उसकी नज़रें आसमान पर पुते कोलतार से जा चिपकती हैं।

एक अन्तराल के बाद उसने पुनः दृष्टि उठाई है। उसकी नज़र बिखर-सी गई है। उसने बिखरती दृष्टि को सप्रयास एकत्र किया है। अपनी कांपती बांह ऊपर उठाई है। ...अब वह घड़ी देख रहा है। ...'दो बजे हैं। जम्मू से कब टैक्सी ली थी ? यहां कब पहुंचा हूं ? यहां खड़े कितनी देर हो गई है मुझे ?' यह सब सोचने में उसे पन्द्रह मिनट लग गए हैं। वह हिसाब लगा रहा है। माथे पर बल डाल रहा है। बिखरे बालों पर हाथ फिरा रहा है। ...और तब उसे आभास होता है कि खम्भे से पीठ टिकाए, एक टांग पर खड़े-खड़े सत्तर मिनट बीत चुके हैं। सत्तर मिनटों का ख्याल आते ही उसकी टांग में दर्द जाग उठता है। हाथ बर्फ जैसे ठंडे पड़ जाते हैं। सर्दी से शरीर अकड़ने लगता है। अपने ठिठुरते हाथों को वह अपनी गर्म बगलों में दबा लेता है और स्वयं एक गठरी-सा सिमट कर बिजली के बल्ब के नीचे बैठ जाता है।

गठरी बना, वह कितनी ही देर अडोल बैठा रहता है। उसका सिर घुटनों पर टिका हुआ है। ठुड्डी छाती में धंसी हुई है और सोचें बेहद उलझी हुई हैं। दिमागी उलझाव को वह सुलझाना चाहता है किन्तु यह उसके बूते से बाहर की बात है। थक हार कर वह अपना सिर फिर घुटनों पर टिका देता है।

एक बार फिर वह डपटती नज़रों से गली के भीतर देखता है। इस बार केवल देख भर नहीं रहा। बायीं तरफ खड़े मकानों को गिनता जा रहा है। हिसाब लगा रहा है कि कौन सा घर किसका है।

पहला—लाहोरी शाह का।

दूसरा—बाबू शाह का।

तीसरा--मुन्ने शाह का।

चौथा—मेरा और मेरे बापू सांझी शाह का।

और पांचवां ? पांचवा घर सावित्री का है। इन पांचों मकानों पर उसकी दृष्टि आकर ठहर जाती है। यह घर गली के पक्के चौबारों का मुंह चिढ़ाता प्रतीत होता है। इसके दरवाज़े इतने टूट चुके हैं कि कोई गया-गुजरा चोर भी भीतर झांक कर नहीं देखता। गली की ओर खुलतीं इसकी खिड़कियां उखड़

गई हैं। इसकी दीवारें गिरने को हैं । एक ज़ोरदार बरसात इन्हें धराशायी करने के लिए काफी है ।

कभी इस घर का मालिक ताराशाह था। किन्तु पन्द्रह साल पहले इसकी दहलीज लांघ कर लक्ष्मी घर से बाहर आ गई। ताराशाह को सोने के सट्टे में पचास हजार का घाटा हुआ। जीते जी इसे पूरा करना उसके बस में नहीं था, अतः उसने मरना ही बेहतर समझा।—स्वयं तो वह चलता बना लेकिन पीछे रह गई चिथड़ों में लिपटी रामदेई और दो साल की बेटी सावित्री। उस मनहूस दिन के बाद उस घर में कभी रौनक नहीं आई। इसकी मैली दीवारों पर कभी किसी ने दो पैसे की सफेदी तक नहीं करवाई।

कितनी देर वह उस मकान की ओर देखता रहता है और 'हूं हूं' करता रहता है। और फिर एक अजब तमाशा होता है। अचानक उस घर के किवाड़ भड़ाक से खुल जाते हैं। किवाड़ क्या खुले, उसका पोर-पोर कांप उठता है। खुले दरवाजे से भीषण कोलाहल बाहर की ओर लपक रहा है। घर में कोहराम मचा हुआ है। आंगन में खड़ी औरतें खुसर-पुसर कर रही हैं।

'मरी के पेट में तीन महीने का पाप था।'

'कहते है संखिया खा लिया।'

'स्वयं तो मर गई कुलच्छनी लेकिन गली की नाक कटवा गई।'

'जाने किस मुए ने मुंह काला किया था।'

'हाय, बेटी! तूने यह क्या किया। हो, इस कंजक का धर्म बिगाड़ने वाले, तुझे ऊपर वाला मारे।' रामदेई विलाप कर रही है। दीवारों से टक्करें ले रही है। पीट-पीट कर उसने छाती नीली कर ली है। ...फिर शंखनाद हुआ है। शवयात्रा चल पड़ी है। आगे-आगे सावित्री का शव है। पीछे 'नमें शहर' के सौ के करीब स्त्री पुरुष हैं। उसकी नज़रें लोगों के पैरों के नीचे कुचली जा रही हैं। आंखें फटने को हैं। सांसों में आंधी का वेग है।

शवयात्रा उसके पास आ पहुंची है। धीरे-धीरे शवयात्रा उसके करीब से गुज़र गई है। लेकिन जिन चार लोगों ने सावित्री का शव उठाया हुआ है वे उसके पास ही खड़े रह गए हैं। वे रोष भरी आंखों से उससे कह रहे हैं कि व्यर्थ ही वह उन्हें बोझ उठाने पर विवश किए हुए है। क्यों नहीं वह अपना मुंह

खोल कर उनका बोझ हलका करता। उनके ज़िद करने पर वह अपना मुंह खोल देता है। ऐसा करते ही वे चारों धीरे-से अपने कन्धों से बोझ उतारते हैं और बड़े यत्न से सावित्री का शव उसके खुले मुंह में घुसेड़ देते हैं। शव धीरे-धीरे उसके गले से उतरता, उसकी छाती के भीतर जा अटकता है। वह चिल्लाता है, तड़पता है। धूल में लोट-लोट जाता है। काम समाप्त होने पर वे चारों क्षण भर के लिए भी उसके पास नहीं ठहरते।

शव की तरह लेटे, उसे आधा घण्टा हो गया है। उसके कानों में 'चप-चप' की आवाज़ पड़ी है। कुछ बुदबुदाता वह उठता है। देखता है, उसके पैरों के पास एक काला पिल्ला खड़ा है। पिल्ले के थूक से गीले हुए अपने गाल को सहलाता है और हंसने लगता है।

अब वह नीचे बैठा पिल्ले के साथ खेल रहा है। वह देखना चाहता है कि पिल्ला 'पिसती' नस्ल का है या नहीं। —'डग' होता तो जरूर चिचियाता। यह तो खामोश हवा में लटका हुआ है। जरूर 'पिसता' (ऊंची नस्ल का) है। —वह भी ऊंची नस्ल की था। खुद मिट गई लेकिन किसी को कानों कान खबर नहीं होने दी। पर उसकी मां 'डग' (छोटी नस्ल) है। वही नहीं इस गली के सभी निवासी 'डग' हैं। बिना हवा में लटके, अकारण, चिल्लाए जा रहे हैं।"

उसके होठों पर एक विषैली मुस्कान फैल जाती है और वह पिल्ले को छाती से लगा लेता है।

शराब का नशा कुछ उतरा है। वह सोच रहा है कि उसे वहां से उठ जाना चाहिए। मात्र चार कदम चलना है। सामने तो घर है। कोई न कोई तो जाग ही जाएगा। फिर मैं आहिस्ता-से सीढ़ियां चढ़ जाऊंगा। इस वक्त किसने पूछना है कि इतनी रात गये कहां था। सुबह किसी ने पूछा तो कोई बहाना बना लूंगा।

पिल्ला उसकी छाती में चेहरा दबाता जा रहा है। उसकी छाती के बालों पर पिल्ला चेहरा रगड़ता है तो उसे गुदगुदी होने लगती है। उसे पिल्ले पर लाड़ आने लगता है। प्यार से वह उसे भींचता है। कुछ ज्यादा ही भींच देता है। हवा में एक मरियल सी 'चौं' की आवाज़ बिखरती है। वह डर जाता है। पिल्ले को दुम से पकड़ कर दूर फेंकता है। पिल्ला सामने नाली में पड़ता है।

वह आंखें फाड़-फाड़ कर कुत्ते के पिल्ले की तरफ देखता है। पिल्ला हिलता जुलता नहीं, न उठता है। ज्यों का त्यों पड़ा रहता है।

वह थरथराता हुआ आगे बढ़ता है। अपने बूट की नोक से पिल्ले को हिलाता है। पिल्ले के दांत भिंचे हुए हैं, आंखें पथरा गई हैं। और मुंह से लेसदार द्रव्य निकल रहा है।

'मर गया भैन चो...। जिस किसी से दो पल खेलता हूं वही मर जाता है। जिसे भी अपनी छाती की गरमाहट देता हूं, वही ठंडा हो जाता है। मर जायो स्सालो, सभी मर जाओ।'

वह पिल्ले की लाश पर पेशाब करता है। सावित्री को, उसकी मां को, गली वालों को चुन-चुन कर गालियां निकालता है। फिर पत्थर उठा कर बल्ब पर फेंकता है। पत्थर लगते ही बल्ब फक्-से बुझ जाता है। —अब आकाश से लेकर धरती तक केवल कोलतार ही कोलतार फैला हुआ है।

अब वह गली के भीतर चला आया है। वह गिरता-पड़ता बढ़ता जा रहा है। उसे एक झोंक लगती है तो दायीं ओर के दरवाज़ों पर उसके हाथ टकराते हैं, दूसरी झोंक लगती है तो बायीं तरफ की खिड़कियां खड़खड़ाने लगती हैं। फिर एक झोंक—'ताड़-ताड़'। फिर दूसरी झोंक—'खड-खड़'। ऐसी झोंकें लेता वह दूर तक निकल जाता है।

खड़खड़ाहट की आवाज़ें सुनकर एक दो चेहरे खिड़की की सलाखों के पीछे से गली के अंधेरे में झांकते हैं। फिर खिड़कियां वन्द कर लेते हैं।

अब वह खड़ा हो गया है। उसे अन्दाज़ा नहीं कि वह कहां खड़ा है। वह कभी पीछे तो कभी आगे देखता है। उसके चारों तरफ काला अंधेरा है। इस निपट अंधकार में अचानक दो जलती हुई आंखें उभर आती हैं। उन आंखों की रोशनी चिता की लपटों के समान है। वे मोटी-मोटी आंखें तेज गति से उसके आसपास उड़ने लगती हैं। उन आंखों की जलन से बचने के लिए वह कभी बैठ जाता है, कभी सिर को बांहों में छुपा लेता है। कभी घबरा कर उठ पड़ता है। पर वे आंखें उसका पीछा नहीं छोड़ती। अब वह हवा में मुट्ठियां भींच रहा है। कितनी ही देर वह हवा पर मुष्टि-प्रहार करता रहता है। फिर वे एक जोड़ी आंखें उससे दूर हटने लगती हैं। वे उड़ती-उड़ती अंधकार के विस्तार में

विलीन हो जाती हैं। वह पल भर सुख का सांस लेता है। उसके माथे का पसीना अभी सूखा ही है कि उसके कानों में भारी भरकम बूटों की डरावनी आवाज़ें पड़ने लगी हैं। आतंक में जकड़ा वह पास आती आवाज़ें सुन रहा है। सीटियां बज रही हैं। भारी बूटों की आवाज़ बढ़ती जा रही है। हथकड़ियां झनझना रही हैं। और फिर सैंकड़ों-हजारों लोगों का समवेत स्वर हवा में फैल जाता है—

'पकड़ो! मारो! सूली पर चढ़ा दो।'

'आयो आयो उल्लू के पट्ठो। मेरे पास तो आयो पिल्लो। मैं एक-एक को मसल दूंगा। मेरी गली के पाप पर मेरी छाती का पर्दा पड़ा हुआ है। किस मां का जाया यह पर्दा हटा सकता है।'

वह पूरी ताकत से चिल्लाता है किन्तु अपनी आवाज़ उसे खुद नहीं सुनाई देती। अब वे आवाजें उसके बिल्कुल पास आ पहुंची हैं। कई हाथ उसे अपनी तरफ लपकते प्रतीत होते हैं। वह डर जाता है। नशे से बोझिल उसके पैरों में फुर्ती आ जाती है। वह सरपट भागता है लेकिन ठोकर खाकर गिर पड़ता है। उसका सिर सामने पहाड़ जितनी ऊंची दीवार से टकराया है। कुछ देर वह वैसे ही पड़ा रहता है। फिर अपनी सांसें बटोरता है और खुद को सम्भालते हुए खड़ा हो जाता है।

'पकड़ो।'

'मारो।'

'सूली पर चढ़ा दो।'

अब वह दीवार से भिड़ रहा है। अपनी बांहों की सारी ताकत लगा रहा है। अपने बूटों की ठोकरें मार-मार कर दीवार तोड़ रहा है। कितनी ही देर वह यह सब करता रहता है। अन्ततः दीवार फट जाती है। काफी बड़ा शिगाफ हो गया है दीवार में।

वह आसानी से गुज़र सकता है। पहले वह एक टांग भीतर करता है, फिर दूसरी। और फिर पूरा धड़ शिगाफ के अन्दर चला जाता है।

सुबह के छः बज गए हैं। लेकिन सेठों की यह गली धूप चढ़ने से पहले नहीं जागती।

टाऊन एरिया कमेटी की जमादारिन सुलतानी गली बुहारने आई है। गली में दाखिल होते ही वह मृत पिल्ला देखती है। —''मर मुए। तुझे भी यहीं मरना था।' वह 'बुड़बुड़' करती आगे जा रही है।

गली की सफाई वह हमेशा दूसरे सिरे से आरम्भ करती है। अभी वह गली को बंद करती दीवार के पास पहुंचती ही है कि उसके हाथ से झाड़ू और टोकरा छूट जाता है।

—'ओ गली वालो !' वह ज़ोर से चिल्लाती है। एक क़दम आगे बढ़ कर सामने पड़े व्यक्ति को ग़ौर से देखती है।

—'ये तो शाह जी का बेटा है।'

'ओ—!' वह सेठ का नाम पुकारने ही लगती है कि उसे याद हो आता है कि सुबह-सुबह सांझी शाह का नाम कोई नहीं लेता। लेकिन वह यह बात भूल जाती है और गली के बीचो-बीच दौड़ती चिल्लाती है—'ओ सांझी शाह, तू बरबाद हो गया।'

सुलतानी की वातावरण को चीरती आवाजें सुन कर गली के दरवाज़े और खिड़कियां खुलने लगी हैं। □

निर्वासित

उसे देख कर मैं कांप उठता। ऐसा लगता, वह एक छोटा-सा खरगोश है जो अपने जंगल से निर्वासित होकर, हरी घास और फेनिल जल को छोड़ कर मेरे घर चला आया हो और अब पछता रहा हो कि उसने यह मूर्खता क्यों की।

आयु में वह मुझ से तीस वर्ष छोटा है। उसके सिर पर सुनहरे घने बाल हैं। मैं तो अब पूरी तरह गंजा हो चुका हूं लेकिन जब मैं उसकी उम्र का था तो मेरे सिर पर भी वैसे ही सुनहरे बालों का छत्र था। उसे खेलते, ज़िद करते, प्रश्न करते, कई-कई घण्टे अकेले बैठें, जागते सोते मुंह में अंगूठा डाले देख कर ताई एक ही बात कहती—यह तेरा ही दूसरा रूप है, बेटा! ताई की यह बात याद आती तो मेरी आंखें लाड़ से भर उठतीं, होठों पर प्यार भरी मुस्कान आ जाती। जी होता, उसे कस कर छाती से लगा लूं। मेरी आतुर बांहें उसकी ओर फैल जातीं पर वह मुझे घूर-घूर कर देखता रहता। एक कदम आगे न बढ़ता। मेरी खाली बाहें कितनी देर हवा में फैली रहतीं। फिर मेरी छाती में कुछ कंपन होने लगता। होठों की मुस्कान मर जाती। तब एक अपराधी के समान मेरी आंखें झुक जातीं।

वह मुश्किल से पांच साल का था लेकिन उसके माथे की सलवटें देख कर मैं उसकी आयु भूल जाता। अपनी भूरी आंखें मिचमिचाते और माथे पर आक्रोश अंकित किए वह हौले से मेरे कमरे में आ जाता। मैं अपना भय छुपा कर बड़े प्यार से उसे पास बुलाता। पर वह आता नहीं। उत्सुक आंखों से मेरे मेज पर पड़े कागजों की ओर देखता रहता। मैं कुर्सी छोड़, अलमारी के

दरवाज़े खोलता और रंगबिरंगे खिलौने निकाल कर उसके आगे ढेर लगा देता। उसके नन्हे हाथ खिलौनों को उलटते-पुलटते। मैं चाबियां घुमा-घुमा कर मोटर साइकिल, जहाज और रेल-गाड़ियां चलाता। शेरों और भेड़ियों से आवाजें निकलवाता। वह मनोयोग से देखता रहता। फिर बिना बोले, बिना माथे के तेवर हटाए, और बिना कोई खिलौना लिए बाहर चला जाता। उसके ऐसे आने और चले जाने से मैं कितनी ही देर उस अध्यापक की तरह किंकर्त्तव्यविमूढ़ रह जाता जिसकी क्लास का निरीक्षण करने के बाद इंस्पेक्टर पैर पटकता कमरे से बाहर चला जाता है।

मेरे अन्य बच्चे उसके सगे भाई-बहिन थे। मगर उसका किसी से कोई लेना देना नहीं था। वे सभी उसे दुलारते थे। हाथ थाम कर उसे पास बिठाते थे। पर वह अपना आप छुड़वा लेता। चुपचाप खिसक जाता। धीरे-धीरे नर्म पैरों से वह छत्त की तीनों सीढ़ियां चढ़ जाता और दीवार के साथ लगी सीमेंट की बैंच पर चला जाता। वहां घण्टों अकेले बैठा रहता। उसकी नज़र ऊंची-ऊंची छत्तों को पार कर दूर बहती तवी के उस पार खड़ी महामाया की पहाड़ियों की तरफ और उनके शिखरों को छूते नीले आकाश की ओर भागती रहती। सभी बच्चे कहीं और खेलते रहते, वह सब से अलग कहीं और गुमसुम बैठा रहता। उसे इसी सीमेंट की बैंच पर अकेले बैठे मैंने कई बार देखा था। बरसात की बारिश में उसके कपड़े भीगते रहते, कड़कती धूप में उसकी देह झुलसने लगती, सर्दी की हाड़तोड़ शामों में वह थरथर कांपता रहता, पर उस बैंच से न उठता। जब कभी उसकी मां गुस्से से उसे उठाती तो वह मिनमिनाने लगता। मैं उसे समझाता कि धूप और ठंड में बैठने से वह बीमार हो जाएगा किसी दिन। वह मुझे इस तरह देखता, मानों मैं कोई महामूर्ख होऊं। बड़ी मिन्नत के बाद हम कभी उसे नीचे लाने में सफल भी हो जाते तो दूसरे ही पल उसके छोटे-छोटे पैर सीढ़ियां चढ़ रहे होते।

मुझे याद है जिस दिन उसने हमारी गृहस्थी के दरवाज़े खटखटाए थे, हम गुस्से और घृणा से पगला गये थे। हम नहीं चाहते थे कि हमारे पांचवां बच्चा हो। वैसे भी उस से बड़ा अभी केवल चार वर्ष का था। हमने जमीन आसमान एक कर दिए थे। जितना उपचार सम्भव था किया! कितनी दवाइआं खाई थीं, कितनी गोलियां ली थी! काढ़े पी-पीकर और इन्जेक्शन लगवा-लगवा कर, उसकी मां ने अपनी शक्ल बिगाड़ ली थीं। लेकिन वह रुका नहीं।

ज़बरदस्ती एक दिन बिन बुलाए मेहमान की तरह सांकलें बजाता, दरवाज़ा खटखटाता हमारे आंगन में आ पहुंचा था। हम हार गए थे लेकिन वह पराजित नहीं हुआ। हमने सोच रखा था कि उसे किसी ज़रूरतमन्द को दे देंगे। लेकिन ऐसा भी नहीं कर सके। हमारी बूढ़ी ताई ने इस बात पर हमें बहुत फटकारा था। जब वह चालीस दिन का हुआ तो वह उसे अपने साथ गांव ले गई। पूरे चार साल वह ताई के पास रहा। पिछले बरस जब ताई का स्वर्गवास हो गया, तो उसे यह समझा बुझा कर कि हम उसके मां-बाप हैं, हम उसे अपने साथ ले आए थे।

गांव से आने के बाद कितने ही दिन वह रोता सुबकता रहा था। उसे कई महीने भेड़-बकरियों, मेमनों, आम और पलाश के पेड़ों मक्का की मोटी रोटियों और गुड़ में भीगे सत्तु को भुलाने में लग गए। बड़ी मुश्किल से हमने उसे चाय और बिस्कुट की आदत डाली थी। कुरता-पाजामा और चादर-अंगोछा उतरवा कर उसे नेकर-बुशर्ट पहनाने में सफल हुए थे। अब पूरा एक वर्ष हो गया था उसे भाई-बहिन, मां-बाप के साथ रहते लेकिन फिर भी वह निर्वासित जैसा ही था। गांव से आने के बाद न तो वह कभी खुल कर हंसा था न रोया था, न बच्चों सी मनुहार की थी और न ही कभी मां को मां कह कर पुकारा था। जब भी उसे भूख लगती, वह रसोई के दरवाज़े के पास जाकर खड़ा हो जाता। यदि दूध लेना होता तो मां के आगे कटोरा रख देता। यदि और किसी चीज का मन होता तो वह रौब से उसका नाम लेता। मनचाही वस्तु मिल जाने पर पर वह सब से अलग किसी अंधेरे कोने में जा बैठता। उसकी ऐसी आदतें देख कर हमारी मन में यह भय बैठ गया कि वह हमें मां-बाप नहीं शत्रु समझता है। उसकी मां रो-रोकर कहती, 'आप मानें न मानें, वह हम से उतनी ही घृणा करता है जितनी हमने पैदा होने पर उससे की थी। जब वह घूरती आंखों से देखता है तो मुझे लगता है मानों मैं उसकी मां नहीं एक हत्यारिन हूं। मुझे कई बार सपने में अपने हाथ उसके लहू से सने दिखाई देते हैं।'

उस रात मैं कोई दस बजे लौटा था। मैंने बहुत शराब पी हुई थी और सीधा अपने कमरे में जाकर सोना चाहता था। पर इस से पहले कि मेरी आंख लग सके उसने कुहराम मचा दिया। वह अपने बिछौने पर बैठा मोटे-मोटे आंसू गिरा रहा था और एक ही रट लगाए हुए था, 'मैंने 'बोबो' के पास जाना है,

मैंने 'बौबो'...। उसकी मां ने उसे चुप कराने का भरसक प्रयास किया, उसे उठा कर यहां-तहां घुमाया। छत्त पर भी ले गई पर वह नहीं माना।

जाने एकाएक मुझे क्या हो गया कि मैं गुस्से से फट पड़ा। उसे हाथों से, लातों से पीटने लगा। पिछले एक साल से उसने मुझे जितना भी डराया-धमकाया था, वह सारा डर, खीझ और घृणा बन कर मेरी छाती से बाहर फूट पड़ा। उसकी मां गिड़गिड़ा कर मुझे रोक रही थी पर मेरे हाथ पैर नहीं रुके। जब उसके रोने और चिल्लाने की आवाज़ बन्द हो गई तो मैं कांपती टांगों से अपने कमरे में लौट आया।

अगली सुबह सभी बच्चे उठे पर वह नहीं जागा। वह बेहोश पड़ा था और बुखार से तप रहा था।

मैंने बड़े-बड़े डाक्टर, हकीम और टोने-टोटके वालों को बुलाया पर उसका बुखार नहीं टूटा। वह एक महीने से खाट पर पड़ा था—जब कभी पल भर उसकी बेहोशी टूटती तो उसके होंठ बार-बार बुदबुदाते-'बोबो' उसकी यह दशा देख कर मेरी आंखे भर आतीं। मैंने अर्धविक्षिप्त होती उसकी मां के सामने सौ-सौ सौगंधें खाकर कहा कि अब कभी-शराब नहीं पिऊंगा। नास्तिक होते हुए भी मैंने मन्दिरों में जाकर घण्टियां बजाईं...लेकिन इसकी दशा नहीं सुधरी।

एक दिन हम सुबह उठे तो हमने देखा कि उनकी खाट खाली पड़ी है। घबराहट में हम चिल्लाते और उसे पुकारते सीढ़ियों की ओर भागे।

वह छत्त पर ही था—सीमेंट की उसी बैंच पर। उसकी आंखें बन्द थीं। चेहरा चढ़ते सूर्य की तरफ था। प्रभातकालीन हवा में उसके झंडूले सुनहरी बाल उड़ रहे थे। उसके होठों पर एक ताजा मुस्कान खेल रही थी। उसे बहुत हलके सांस आ रहे थे।

उसकी मां आगे बढ़ी। उसे पुकारा। लेकिन उसने आंखें नहीं खोलीं। वहां पड़ा-पड़ा वह ऐसे लग रहा था मानों नीले आकाश से एक नन्हा फरिश्ता लाखों मीलों की उड़ान भर कर धरती पर उतरा हो, तनिक विश्राम के लिए सीमेंट की उस बैंच पर आ बैठा हो।

उसकी मां नाम ले लेकर उसे पुकार रही थी और मैं उसकी आंखों के आंसू पोंछते हुए कह रहा था, "सो लेने दे इसे पल भर। तुम्हें नहीं मालूम इस नन्हे फरिश्ते को अभी और कितना सफर तय करना है।' □

कोयल

पंडित संसार चन्द ने एक सौ इक्कीस रुपये पिचहत्तर पैसे दो बार गिन कर कोट की भीतरी जेब में डाले और कोषागार के घुटन भरे कमरे से बाहर चले आए। कमरे में उन जैसे सैंकड़ों पेंशनर अपनी उम्र की गठरियां उठाए, जर्जर शरीरों कांपती टांगों, झुर्रियों के जालों में सिमटी आंखों, सहमी दृष्टि से और घुटती सांसों से अपने-अपने नाम सुनने की आशा में सुबह से खड़े बेहाल हो रहे थे। पल भर खज़ाने वाली ड्योढ़ी में रुक कर उन्होंने माथे का पसीना पौंछा। अपनी पगड़ी और ऐनक ठीक की। और फिर गौर से खजानची के काऊंटर पर टिकी अनगिनतत कुहनियों—उतावली, आगे-पीछे होती, उलझतीं, मोटी, पतली टेढ़ी, पल भर हवा में उठ कर निराशा से नीचे गिरती, भीतर से चपरासी द्वारा लाए जाने वाले स्वीकृत बिलों और पेंशन बुकों के पुलिंदों की तरफ लपकती बाहें देख कर उन्होंने एक लम्बा सांस लिया। यह सोच कर कि इन सैंकड़ों हाथों में हर माह की दूसरी तीसरी तारीख को उनके भी दो हाथ शामिल हो जाएंगे, वे उदास-से ड्योढ़ी से बाहर निकल आए। सवा एक हो रहा था। दफ्तरों, स्कूलों से छुट्टी करके क्लर्क, चपरासी, अफसर, अध्यापक, अध्यापिकाएं, लड़के-लड़कियां घरों को जा रहे थे। मानव जीवन का एक दरिया-सा रवां था जिसकी रंग-बिरंगी लहरें अविराम गतिशील थी। एक जुलूस था जिसे देख कर आकाश पर बनते मिटते सतरंगे इन्द्रधनुष की याद आ जाती थी।

एक महीना पहले वे भी इसी सुहावनी भीड़ से गुजरते थे—वड़ी शान और प्रतिष्ठा से। पीछे-पीछे एक चपरासी चलता जिसने सरकारी कागजात वाली

काली संदूकची उठाई होती । क्लर्क, चपरासी, दफ्तर के बाबू और परिचित हाथ जोड़ कर नमस्ते करते और वे तनिक गर्दन हिला कर, बड़ी कजूंसी से ओठों पर एक-आध इंच मुस्कान लाकर उनके अभिवादन का जवाब देते । कई ज़रूरतमंद लोग दफ्तर से ही उनके साथ हो लेते और रास्ते में उनसे मिन्नतें करते । वे उनकी बातें सुनते भी और नहीं भी । वे किसी को आंखों से डपट कर देखते तो किसी को मुस्करा कर । उनकी मुस्कान जीतने वाले अपने भाग्य को सराहते और उनकी भृकुटियों का कड़वापन कई लोगों की छाती में खलबली पैदा करना । वे चलते चलते रुक जाते तो उनके साथ चलने वालों की टोली भी थम जाती । किसी दुकान से यदि वे अपने पोती-पोते के लिए किताबें या बस्ता लेते या घर के लिए आम-संतरों से टोकरी भरवाते, तो मना करने पर भी साथ चलने वाले अपनी जेब से पैसे दे देते और इस तरह उनकी कृपा दृष्टि के पात्र बनने की चेष्टा करते । कितना दबदबा था उनका । कितनी इज्जत थी । बड़े-बड़े अफसर कैसे उनकी उंगलियों पर नाचते थे । कैसे वे लोगों के काम करवाते थे ! फाइलों पर कैसे-कैसे नोट लिखते थे । उनकी कलम की एक हरकत से बने-बनाए काम बिगड़ जाते थे और बिगड़े संवर जाते थे । बड़े-बड़े घमंडियों, दौलत के नशे में सिरफिरे ठेकेदारों से दण्डवत करवाए थे । कइयों के कान खींच कर उन्हें समझदार बनाया था ।

लेकिन एक महीना पहले यह सब समाप्त हो गया । उन्होंने लाख कहा कि वे स्वस्थ हैं, बिना विश्राम दिन में चौदह-पन्द्रह घन्टे काम कर सकते हैं, और उनके दफ्तर की 'सुपरिडैंटी' उनके बिना नहीं चल सकती । पर सरकार नहीं मानी । वे पचपन वर्ष के हो गए थे और सरकारी कानून बदलना असम्भव था । अतः पिछले महीने की दो तारीख को वे सेवानिवृत्त हो गए । घर आकर अपने बेटे, बहू, बेटी और पोते-पोती से कहने लगे, मैं रिटायर हो गया हूं । तीस सालों की नौकरी आज खत्म हो गई । अब मैं दफ्तर नही जाया करूंगा । कोई फाइल नहीं देखूंगा ।...दरवाज़े से मेरी नेम प्लेट उखाड़ दो और अब अपना आप सम्भाल लो । जितनी देर मेरी पैंशन के कागज़ात तैयार होकर नहीं आते तब तक मैं तुम्हारे पास रहूंगा । बाद में गांव चला जाऊंगा ।"

'गांव ? किस के गांव, पिता जी ?' उनकी बात सुनकर प्रकाश ने हैरानी से पूछा था ।

'अपने गांव मानसर, जहां से चालीस साल पहले मैं खाली हाथ आया था। बहुत जान खपा ली। जो कुछ कर सकता था वह सब कर लिया। अब मैं आराम करना चाहता हूं। और विश्राम के लिए मानसर से अच्छा अन्य कोई स्थान नहीं। तेरी मां की भी यही इच्छा थी। मगर उसका साथ छूट गया।' यह कह कर वे पल भर चुप हो गए। पत्नी की याद आते ही उनकी आंखें भर आई थीं। फिर अपने आपको सम्भालते हुए प्रकाश को सीख देने लगे। 'अब घर की सारी जिम्मेवारी तुम्हें ही उठानी है। इस एक बहन की शादी करनी है और अपना परिवार सम्भालना है। भगवान् तुम सभी को सुखी रखे।'

उनकी बातें सुन कर प्रकाश और उसकी पत्नी के चेहरे उतर गए। बहू बेटे ने यह नहीं सोचा था कि पिता रिटायर होने पर वनवास चले जाएंगे। उनका तो यही विचार था कि रिटायर होने पर प्रकाश पिता के लिए किसी प्राइवेट फर्म में नौकरी का जुगाड़ कर लेगा और इस प्रकार घर की आय में कोई अधिक फर्क नहीं पड़ेगा। किन्तु पं० संसार चन्द के मुंह से मानसर जाने की बात सुन कर दोनों घबरा गए। इस घबराहट के कारण घर का प्रफुल्ल वातावरण मिट गया। दूध दही का खर्च कम हो गया। सुबह शाम दाल या सस्ती सब्जी पकने लगी। छोटी-छोटी बातों पर घर में बर्तन पटके जाने लगे। मामूली बात पर बच्चों की पिटाई होने लगी। पहले जहां घर में बहार थी, खुशियां थीं, अब वहां या तो सूनापन छा गया या बच्चों का रोना-चिल्लाना सुनाई देता।—घर का वातावरण एकदम मातमी-सा हो गया। ऐसे माहौल में सुबह-शाम अपने कमरे में रामायण पाठ करते हुए संसार चन्द को ऐसा लगता मानो उनकी आवाज उस पंडित से मिलती-जुलती है जो ऊंचे स्वर में गरुड़ पुराण बाच रहा हो।

पं० संसार चन्द अब नगर का बाजार पार करके उस सड़क पर चल रहे हैं जो जंगलात के ठेकेदार लाला धनराज की कोठी तक जाती थी। लाला जी का नौकर उन्हें तीन चार दफा बुलाने आया था।

वह धीरे-धीरे चल रहे थे और उनके विचारों पर मानसर झील के चहुं ओर लगे घने आम्र वृक्षों की छांह पड़ रही थी, जिनके हरे पत्तों में छिपी कोयल कूक रही थी। ऐसी मीठी कुहुक सुनने की फुर्सत उन्हें गत चालीस वर्षों में एक बार भी नहीं मिली थी। उन्हें वे दिन याद हो आए जब वे एक मुर्गाबी की तरह

मानसर के नीले-हरे पानी में एक किनारे से दूसरे किनारे तक तैरते चले जाते थे। बरसात में पहाड़ों की चोटियों पर, किसी साधु-सन्त द्वारा रमाई धूनी के धुएं की तरह आसमान की ओर उठते बादल और मोतियों की लड़ियों की तरह छमाछम पड़ती बारिश में अमियों से लदे वृक्षों के नीचे, लम्बे चोगे जैसा कुरता पहने लड़के-लड़कियों में वे भी होते। कई बार घर से पाठशाला जाते मगर रास्ते में मन्दिर की एक नुक्कड़ में बस्ता छुपा कर बाहर से आए साधु संन्यासियों से कथा कहानियां सुनते रहते। कभी शहर से बच्चों के उपनयन के उपलक्ष्य में बाल उतारने आए लोगों की भीड़ में खो जाते। घने छायादार पेड़ों की ऊंची डाल पर बैठे रहते। अबोध फाख्ता का विलाप—'बच्चा टोटड़ू, गुल्लां त्रै टुप्पें' का कोयल की कू-कू सुनते दिन गुज़ार देते—कितने रस भरे दिन थे वे। वे संध्याएं कितनी शीतल थीं ! वे रातें कितनी उजली थीं। वे संगी-साथी कितने भोले और सच्चे थे। चालीस साल इस शहर की धूल खाकर भी पं० संसार चन्द ने अपनी शैशवकालीन स्मृतियों को धूमिल नहीं होने दिया है। और वे अब अपनी आयु के गोले पर प्रारम्भिक और अन्तिम दिनों के एक जैसे रंगीन धागे लपेट कर जीवन-चक्र को पूरा करना चाहते हैं।

उन्होंने सब सोच रखा था। पुरखों की थोड़ी-सी ज़मीन अभी शेष थी। वे उस पर एक कमरा डाल लेंगें। रोज सुबह भोजन के बाद मानसर के किनारे कहीं एकान्त में दरी बिछा कर बैठ जाया करेंगे और वे किताबें पढ़ेंगे जो गत चालीस वर्षों में उन्होंने खरीदीं थीं लेकिन जिन्हें पढ़ने का समय उन्हें कभी नसीब न हुआ। वे सब किताबें वे एक विद्यार्थी की तरह पढ़ेंगे। हर माह दो तीन दिनों के लिए शहर आया करेंगे। अपनी पेंशन लेकर और बेटे-बहू से मिल कर पुनः मानसर लौट जाया करेंगे।—और इस प्रकार एक दिन जीवन-यात्रा समाप्त हो जाएगी। यह सोचते पं० संसार चन्द धनराज की कोठी के सामने आ पहुंचे।

कोठी के फाटक से गुज़र कर वे बगीचे में आ गए। आमों के वृक्ष पीले बौर से लदे हुए थे। हवा में एक महक फैली हुई थी। 'यही दिन हैं जब कोयल की कुहुक अन्तःस्थल को छू लेती है। इन पेड़ों में कहीं न कहीं मौसम की रानी अवश्य बैठी होगी।'

आमों के वृक्षों के नीचे खड़े होकर वे गर्दन उठा कर कोयल को ढूंढने लगे। उनका हृदय कोयल का स्वर सुनने को लालायित हो उठा था। लेकिन

इसके स्थान पर उन्हें सुनाई दी लाला धनराज की आवाज़ जो कोठी के बरामदे में खड़े उनकी तरफ मुस्करा कर देख रहे थे।

'आइए पंडित जी। मैं आपका ही इंतजार कर रहा था।' लाला धनराज उन्हें कोठी के भीतर ले गए।

'पंडित जी आपसे एक निवेदन है। किन्तु पहले वचन दें कि आप उसे ठुकराएंगे नहीं।' धनराज ने संसार चन्द को पास बिठाते हुए कहा। 'बात यह है कि मुझे आपकी सहायता चाहिए। आप जैसा दफ्तरी कामकाज का जानकार मेरी नज़रों में अन्य कोई नहीं।' धनराज इतना कह कर कुछ पल रुके और बड़ी नम्रता से बोले, 'मैं आपका उपकार मानूंगा यदि आप हमारी फर्म की मैनेजरी स्वीकार कर लें। आप तो जानते हैं कि पिछला मैनेजर सत्तर हज़ार रुपये का घोटाला करके लापता हो गया है। सारा कामकाज ठप्प पड़ा हुआ है।...कृपया न मत करें। मैं आपको चार सौ रुपये प्रति मास देने को तैयार हूं।'

'चार सौ रुपये?' संसारचन्द ने हैरानी से लाला की तरफ देखते हुए पूछा।

'हां। चार सौ पर काम तो शुरू करें। पचास रुपये और बढ़ा देंगे।'

लाला धनराज संसार चन्द की तरफ देख रहे थे और संसारचन्द सोच रहे थे कि तीस साल नौकरी करने के बाद भी उन्हें चार सौ रुपये माहवार वेतन नहीं मिला।

चार सौ रुपये तो बहुत होते हैं। चार सौ से तो घर के मातमी वातावरण में पुनः हंसी के झरने फूट पड़ेंगे। बहू-बेटे के चेहरों पर रौनक आ जाएगी। चार सौ से तो बेटी की शादी...! उन्होंने ज्यादा नहीं सोचा और हां कह दी। अनुबंध पर उसी समय हस्ताक्षर कर दिए और अगले रोज़ ड्यूटी पर हाजिर होने का वचन दे दिया।

कुछ देर फर्म के कामकाज की जानकारी प्राप्त करने के बाद जब संसार चन्द कोठी से बाहर आए तो सामने किसी वृक्ष में छिपी कोयल की कू-कू सुनकर कांप उठे। कोयल का स्वर उनके कानों से छाती में प्रवेश करके उनकी आत्मा

के तारों को झंकृत कर गया। वे रुआंसे-से, खड़खड़ाते सूखे पत्तों पर पांव धरते उसी तरफ खिंचे जा रहे थे जिधर से कोयल की आवाज आ रही थी। उनका मन रो उठा। पल भर पहले मिलने वाली खुशी मिटने लगी। वे उदास नज़रों से वृक्षों की टहनियों में झांक रहे थे जहां बैठी कोयल, आम के बौर से सुरभित हवा को छेड़ रही थी।

अचानक कहीं से किसी लड़के की गुलेल से छूटा सनसनाता पत्थर पत्तों को चीरता और, बौर बिखेरता आया। ...अगले ही पल हवा में एक पक्षी फड़फड़ाता उड़ा और उनके सिर के ऊपर से गुज़र गया।

पंडित संसार चन्द उदास नज़रों से देख रहे थे। पल भर पहले कूकने वाली कोयल आकाश के नीले विस्तार में लोप होती जा रही थी। □

दौड़

घर-घर जाकर अखबारें बांटने वाले छोकरे का नाम साईंदास है। उसकी आयु सत्रह वर्ष के करीब है लेकिन चेहरे पर दाढ़ी मूंछ अभी पूरी तरह नहीं निकली। सिर पर वह खादी की टोपी पहनता है मगर उसकी लम्बी चोटी टोपी के बाहर ऐसे लटकती रहती है मानो किसी ऊंची 'परछती' पर पड़ी टोकरी तले दबे सांप की दुम नीचे लटक रही हो। उसके गले में काले धागे में बंधा चाँदी का तावीज़ पड़ा है, कानों में सोने की ''नैंतियां' हैं। उसका शरीर तगड़ा है। उसके पैरों की जूतियां और मोटे कपड़े देख कर कोई भी अनुमान लगा सकता है कि साईंदास हमारे पहाड़ों का वासी है।

पिछले चार महीनों से वह हमारे घर अखवार देने आ रहा है। गर्मियों की जलती दोपहर को जब उसके साईकिल की घण्टी की टनटनाहट सुनाई देती तो मैं पंखें के नीचे लेटी अपनी पत्नी से कहता, 'उठो सुराही से एक गिलास ठंडा पानी ला दो।'

'अखबार, बाबू जी।'

'अन्दर ले आओ।'

साईंदास साइकिल दीवार के सहारे खड़ा करता है और पसीने से लथपथ, सूखते होठों पर बार-बार जवान फेरता, मिट्टी धूल से सना, लम्वे निश्वास छोड़ता भीतर चला आता है।

उदासी तो वैसे भी उसके चेहरे पर छाई रहती है। पर उस समय उदासी के अतिरिक्त खीझ, घृणा और चेहरे पर जमी धूल की परत के कारण उसकी

शक्ल इस कदर बिगड़ी हुई होती है कि अगर कोई रोता हुआ आदमी उसे देख ले तो अनायास हंस पड़े और यदि कोई हंसने वाला देख ले तो कई दिन हंस न सके।

'क्या हालत हो गई है बेचारे की ? धन्य है इसकी कमाई।' मेरी पत्नी उसे ठंडे पानी का गिलास देती है जिसे वह एक ही सांस में खाली कर देता है। और फिर गिलास नीचे रखकर जूते उतार कर दरी पर बैठ जाता है। सिर से टोपी उतारता है, कुर्ते के बटन खोलता है और पल भर पंखे की हवा लेकर एक लम्बा सांस खींचता है और बड़े दु:खी स्वर में कहता है, 'यह सब उसकी करनी का फल है।'

'किसकी करनी का साईंदास ?' मेरी पत्नी ठुड्डी पर हाथ रखे उससे पूछती।

'उसकी करतूतों का, भैन जी, जो बनता तो मित्र है लेकिन उससे बड़ा शत्रु कोई नहीं मेरा।'

यह कह कर वह एक पल मौन रहता है। घुटनों पर सिर रख कर आंखें मूंद लेता है और पहाड़ों की स्मृतियों में खो जाता है। 'कहां वह देवदारों और चीड़ों की ठंडी छांह, फर-फर चलती हवा के झोंके, कल-कल बहते चश्मे, सफेद धुंध और हरे-भरे मैदान--और कहां यह चारों तरफ उड़ती धूल और आग बरसाता आसमान ! हज़ार मिन्नतें की थीं कम खाकर गुज़ारा कर लेंगे। पर वह नहीं मानता। बस यही ज़िद लगाए रखता कि थोड़ी तकलीफ और सह ले। विपदा के कुछ दिन ही रह गए हैं, फिर तू भी मेरी तरह स्वर्ग का आनन्द लेगा, तेरे पास भी किसी चीज़ की कमी नहीं रहने दूंगा मैं। तेरे लिए शानदार बंगला ले देंगे। सैर के लिए मोटर होगी। लोग विवाह करते हैं तुम स्वयंवर रचाना। सारी उम्र ऐश करना। क्या लेना है पहाड़ों में जाकर ? सारी उम्र हाड़तोड़ मेहनत करो और खाने को वही सत्तु और मक्का की मोटी रोटी ! वह भी कोई जीना है !'

'तो तुम्हारा मित्र कोई बड़ा आदमी है ?' मेरी पत्नी बड़े आश्चर्य से पूछती।

'बड़ा होगा तो अपने लिए। मैंने आज तक उसका कोई बड़प्पन नहीं देखा। केवल बातें ही सुनी हैं जिनमें ठगी और झूठ है, सच लेशमात्र नहीं।'

'यदि ऐसी बात है तो तू उसे छोड़ कर चला क्यों नहीं जाता ? ऐसे दोस्त का क्या फायदा जो दूसरे का दु:ख दर्द न पहचान सके !'

'बस यही खराबी है मुझ में, भैन जी। मैं उसे छोड़ कर जा नहीं सकता। आप यह मान लें कि उस दुष्ट ने मुझे जादू के बल पर बेबस कर रखा है। एक साल से वह मुझे अपने पीछे दौड़ा रहा है। दौड़-दौड़ कर मैं अधमरा हो गया हूं।' इतना कहते-कहते साईंदास का गला भर्रा आता है। वह घूंट से भरने लगता है। इससे पहले कि उसकी आंखों से आंसू छलक उठें वह पैरों में जूतियां फंसा कर झट बाहर चला जाता है।

देर तक उसकी घण्टी की आवाज़ आती रहती है।

'बेचारा, कैसी विवशता है अभागे की ?' मेरी पत्नी उसके दु.ख में द्रवित हो उठती !' कैसा चांडाल मित्र है इसका ! जो स्वयं तो बंगले में रहता है और इसे साठ-सत्तर रुपये की नौकरी में धूप में झुलसा रहा है।'

वह मेरी ओर देखती है किन्तु मैं उसे उत्तर दिए बिना अखबार में डूब जाता हूं। अखबार बिहार और उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में अकाल की लपेट में आए, दाने-दाने को तरसते लोगों के चित्रों से भरा पड़ा है। मैं कुछ देर अखबार के पृष्ठ उलटाता रहता हूं और फिर तनिक उदास होकर उसे एक तरफ पटक साईंदास के विषय में सोचने लगता हूं।

साईंदास ने अपने वैरी मित्र के बारे में मुझे कई बातें सुनाई हुई हैं। एक बार उसने मुझे बताया था कि साल भर पहले एक दिन वह उसकी बातों में फंस कर खेत-खलिहान, घर-बाहर और बूढ़े मां-बाप को छोड़ कर शहर की धूल चाटने चला आया था।

'बाबू जी।' उसने पीड़ा भरे स्वर में सारी बात खोलते हुए बताया था, 'मेरी यह दौड़ तब शुरू हुई थी जब मैं अपने खेतों में धान की रोपाई कर रहा था। मेरे हाथ-पांव कीचड़ से सने हुए थे। मेरा बुरा हाल देखकर मेरा दुश्मन ठहाके लगाता-लगाता बेहाल होने लगा। 'तू मूर्ख है।' उसने पुन: ज़ोरदार ठहाका लगाया। 'तू······तू मिट्टी-गारे में अपनी ज़िन्दगी नष्ट कर रहा है। तेरे पूर्वजों ने भी यही किया और उन्होंने भी अपना जन्म अकारण गंवा दिया। तुम्हें फिर भी अक्ल नहीं आई। लानत है तेरे जीने पर। यह भी कोई जीना है ?'

'तो फिर क्या होता है जीना ?'

—जीना ? जीना सीखना है तो खेत की मिट्टी से बाहर निकल। हाथ पैर धोकर साफ करो। पांव में जूता पहनो, और मेरे पीछे आओ।

'पर कहां ले चलोगे तुम ?'

'मैं तुझे वहां ले चलूंगा जहां लोग जीते जी स्वर्ग का आनन्द लूटते हैं। जहां गगन चुम्बी भवन हैं। चमचमाती सड़कें हैं, खनकते रुपयों का संगीत है। यदि तू अपना जीवन संवारना चाहता है तो मेरे पीछे चला आ। मुझ पर विश्वास रखो। मेरी बात मानोगे तो एक दिन लाखों में खेलोगे। तेरे पास भी चार-मंज़िला कोठी होगी। मान-सम्मान होगा, भला यह भी कोई जीवन है जो तुझ जैसे मूर्ख इन गांवों में व्यतीत कर रहे हैं।'

'बाबू जी, मैं उसकी बातों में आ गया। मैंने खेत त्याग दिए और इस के पीछे भागने लगा।...और अब मेरे भटकाव का एक साल होने को आया है। मैंने लोगों के घरों में बर्तन साफ किए। कुलीगीरी की। और भी कई तरह की नौकरियां की—और अब पिछले चार महीनों से अखबारें बेच रहा हूं। एक साल में यहां जितनी जान हलकान की है इतनी मेहनत अगर खेतों में की होती तो कोठार भर लेता अनाज के। ईश्वर ही जानता है, मेरे खेत किस हाल में होंगे ! बापू से तो खेत जमीन का काम होता नहीं था।

उसकी ये बातें सुन कर मैं पल भर मौन रहा था। फिर एक मास पुराने अखबार उसके सामने रख दिए थे जिनमें दरार खाई धरती और रोते बिलखते लोगों की तस्वीरें थीं।

OO

कल दोपहर साईं दास अखबार देने आया तो कहने लगा, 'बाबू जी, मेरी दौड़ समाप्त हो गई है।'

'अच्छा ? आज तुम धन्य हुए। तो तेरे मित्र ने तेरे रहने का जुगाड़ कर ही लिया।'

'नहीं'।

'तो क्या वह तेरे साथ वापिस जाने को राजी हो गया !'

'नहीं'

'नहीं ?' मेरी पत्नी ने बड़े आश्चर्य से पूछा, 'तब कैसे समाप्त हुई तेरी दौड़ ?'

'मैंने अपने दुश्मन की हत्या कर दी।'

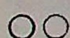
'तुमने उसे मार डाला ?'

'हां, अब मैं उसकी लाश लेकर जा रहा हूं।'

'यह क्या कह रहे हो साईं दास।' मेरी पत्नी को उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ।

'सच कह रहा हूं, भैन जी। कितने दिनों से मैं उसे समझा रहा था कि मुझ से यह पाप मत करवा कि किसान का बेटा होकर मैं खेतों की मिट्टी से दूर रहूं। लोग दाने-दाने को मोहताज़ हैं और तुम मुझे महलों के सपने दिखा रहे हो !...लेकिन वह नहीं माना। कल रात भी उसने मेरे साथ यही झगड़ा किया। वह फिर बातों का जाल बिछाने लगा। लेकिन इस बार मैं बच निकला। रात भर मेरा उससे युद्ध होता रहा और अन्त में मैंने उसकी गर्दन टीप दी।

मैं और मेरी पत्नी अवाक् रह गए। वह कहता गया, 'उस धोखेबाज़ की लाश छाती में छुपा कर अब मैं जा रहा हूं। उस लोभी शत्रु साईं दास की लाश, जिसने पिछले एक साल मुझे कहां-कहां की खाक छनवाई।' वह अपनी आंखों के आंसू पोंछने लगा और फिर सिसकते-सिसकते कमरे से बाहर चला गया।



बाहर आग बरस रही है। तेज लू चल रही है। दो बजे हैं। अचानक साईकिल की घण्टी 'टन्-टन्' बज उठती है।

'अखबार, बाबू जी।'

'अन्दर ले आयो।'

सतरह-अठारह साल का एक छोकरा भीतर आया है । वह पसीने में सराबोर है । अपने सूखते ओठों पर जीभ फिरा रहा है । उसके सिर पर खादी की टोपी है । जिससे निकली उसकी चोटी गर्दन को छू रही है । गले में चांदी का तावीज़ है । उसकी जूतियां और मुचड़े हुए कपड़े देख कर कोई भी कह सकता है कि वह हमारे पहाड़ों का वासी है ।

'तुम कौन से दास हो भई ?'

'जी ?—जी मिलखी दास'

'तेरे घर पहाड़ में हैं ?'

'जी ।'

'अब क्या तेरी दौड़ शुरू हुई है ?'

'जी !—जी हां'

मेरे सवालों से घबरा कर वह लड़का हड़बड़ा-सा जाता है और झट से बाहर चला जाता है ।

बाहर सड़क के पिघले तारकोल पर वह दौड़ता जा रहा है और उसके साईकिल की घण्टी वज रही है—टन-टन-टन 

एक आदमी की मौत

तार पढ़ने के बाद भी मेरा मन नहीं माना कि बलदेव इस संसार में नहीं रहा।

बार-बार मैं उसकी मां से एक ही बात कह रहा था, 'मैं नहीं मान सकता कि उसने ज़हर खा लिया है। वह आपका बेटा है लेकिन मेरा दोस्त भी है। मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं। वह थक अवश्य गया था किन्तु उसने हार नहीं मानी थी। अभी दस दिन पहले उसका पत्र आया था कि वह नौकरी का झंझट छोड़ कर नया जीवन शुरू कर रहा है। यह तार सच्चा नहीं हो सकता।'

लेकिन बलदेव की मां मेरी बात सुन कर भी अनसुनी कर रही थी और अपने चेहरे पर दोहत्थड़ मारे जा रही थी। 'मुझे मालूम था यह होकर रहेगा। हाय, उस चुड़ैल का बेड़ा गर्क हो। चार सालों में ही उसने मेरा घर तबाह कर दिया। उस रांड ने लड़के को परिवार से अलग कर दिया। उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर के भाई-बहनों को दुश्मन बना दिया। जाने उसे क्या 'खिला' दिया था कि वह सदा उसके इशारों पर नाचता था। उस छिनाल ने एक पल आराम से नहीं रहने दिया। ...हाय, नासपीटी, अब कटोरा लेकर गली-गली में ठोकरें खाना।'

तार रात को आया था। सुबह इन्दिरा दीदी और भूषण श्रीनगर चले गए थे। ...मेरा दिल बार-बार कह रहा था कि तार झूठा है। ...और अगर तार झूठा नहीं तो सचमुच अनर्थ हुआ था। अनर्थ इस बात का नहीं था कि एक बत्तीस वर्षीय नौजवान ने ज़हर खा लिया था और वह मेरा अन्तरंग मित्र था। अप्रत्याशित आघात तो यह था कि सैंकड़ों आंधियां-तूफान झेलने वाला दरख्त

एकाएक उखड़ गया था। एक ऐसा व्यक्ति मर गया था जिसने समय के उच्छृंखल सागर में रहते हुए भी अपने ऊपर एक बूंद तक गिरने नहीं दी थी। वह एक मामूली आदमी था, डेढ-दो सौ रुपये वेतन पाने वाला एक क्लर्क लेकिन उसके जीवन में जो स्वच्छता थी, आदर्शों की जो चमक थी, अन्याय, धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार और अफसरशाही के विरुद्ध संघर्ष करने की जो शक्ति थी, वह आज के बड़े-बड़े नेताओं और सुधारकों के जीवन में दिखाई तक नहीं देती।

यह सच है कि उसके सगे-सम्बंधी, दोस्त, सहकर्मी और अधिकारी उससे सदैव रुष्ट रहते थे। किन्तु यह भी सच है कि उनकी इस नाराज़गी के लिए बलदेव को दोषी नहीं माना जा सकता था। उसके अधिकारी और क्लर्क-सहयोगी इसलिए खफा रहते थे कि वह बिना घूस लिए लोगों के काम कर देता था और दफतर में हेराफेरी करने वालों की लोगों में पोल खोलता रहता था। उसके दोस्त इसलिए नाराज रहते थे कि वह उनके साथ सिनेमा और होटलों में नहीं जाता था और कालेज की पढ़ाई छोड़ देने के बाद भी पुस्तकालय से मोटी-मोटी किताबें लाकर पढ़ता रहता था। उसकी मां इसलिए खफा थी कि उसने बड़े घरों के रिश्ते ठुकरा कर एक गरीब क्लर्क की लड़की से आर्य समाज में जाकर विवाह कर लिया था। उसके सगे-संबंधी इसलिए रुष्ट थे कि उसने न तो अपने बेटे का नामकरण संस्कार किया और न ही उसके मुंडन करवाए। एक रोज नाई को घर बुलाकर पप्पू के बाल उतरवा दिए थे। गली-मौहल्ले वाले इसलिए उससे बात नहीं करते थे कि वह बिजली चोरी करने वालों और राशन कार्ड में जाली नाम लिखाने वालों की शिकायतें करता था। घर से कूड़ा और मैला उठाने वाले जमादारों और बर्तन मलने वाली महरियों को मासिक मज़दूरी बढ़ाने के लिए उकसाता रहता था। इन सभी बातों के परिणामस्वरूप उसकी दुनिया सिमटती चली गई। कमला भाभी और छोटे पप्पू के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति नहीं था जिसे वह अपना कह सकता। मेरी कई बार उससे बहस होती, उसे समझाता कि वह अकेला दुनिया भर की बुराइयां ठीक नहीं कर सकता, कि जिसे वह अपनी ईमानदारी कहता है उसका आज के जमाने में मुंह काला है। आवश्यकता से अधिक सत्य युगों से सूली पर चढ़ाया जाता रहा है, समय की धारा के विपरीत चलने वाले को विषपान करना पड़ता है। मैंने और कमला भाभी ने कई बार उससे कहा था कि वह अपने दिमाग में कुलबुलाते कीड़े को निकाल बाहर फैंके। हमारी बातों पर पहले तो वह हंसता और फिर होठों पर उदास-सी

मुस्कराहट लाकर कहता, "जिस रोज मेरे भीतर का वह कीड़ा मर जाएगा, उसी दिन मेरा भी अन्त हो जाएगा।

वह अपने अन्दर के उस कीड़े को पालता रहा और जीवन में विष घोलता रहा। और पिछले वर्ष जब उस पर केस बना तो उन चपरासियों ने भी उसके खिलाफ बयान दिए जिनके अधिकारों की खातिर वह कई बार अपने अधिकारियों से उलझ पड़ा था। उसके विरुद्ध केस सरासर झूठा था। उसके अफसर ने चार पांच ठेकेदारों से विभाग को लिखित शिकायतें करवाई थीं कि क्लर्क बलदेव चन्द उनसे घूस मांगता है। सभी जानते थे कि यह दोषारोपण गलत है। बलदेव को फंसाने के लिए एक जाल बुना गया है। लेकिन फिर भी जिस किसी ने बयान दिए उसके खिलाफ ही दिए। उसके निलम्बन का आदेश बड़ी मुश्किल से तबादले के हुक्म में बदला और उसे बड़े दुःखी मन से अपना साज-सामान उठा कर श्रीनगर जाना पड़ा।

श्रीनगर से उसके पत्र आते रहते थे। पत्रों से लगता था कि वह अब थक-सा गया है। मैं उसे पत्र लिखता कि वह अपने भीतर के कीड़े को मार डाले।...एक बार उसकी चिट्ठी आई कि उसके भीतर कुछ मरता जा रहा है। पढ़ कर मुझे खुशी हुई। फिर एक चिट्ठी कमला भाभी की आई कि आजकल उनका स्वभाव बड़ा अजीब हो गया है। वे कई-कई दिन पप्पू को भी नहीं बुलाते। चिट्ठी पढ़ कर कमला भाभी की रोती आंखें याद हो आईं।

चार माह पहले श्रीनगर से एक दोस्त आया था। उसने बताया कि बलदेव को अब कुछ अक्ल आने लगी है। अब तो उसका रहन-सहन भी बदल चुका है। उसके दफ्तर के सहयोगी भी हंस कर बात करते हैं उससे। मन की खुशी प्रकट करते हुए मैंने कमला भाभी को बधाई की चिट्ठी लिखी थी।

दस रोज पहले मुझे बलदेव का अन्तिम पत्र मिला था। उसने लिखा था कि नौकरी से उसका मन ऊब गया है। सम्भवतः दो चार दिन में इस्तीफा दे दूंगा। कमला से परामर्श कर लिया है। वह भी यही चाहती है। मेरा विचार नौकरी छोड़ कर ठेकेदारी शुरू करने का है। बारह वर्ष की नौकरी से विभाग के इन्जीनियरों, अधिकारियों तथा अन्य ठेकेदारों से अच्छा परिचय बन चुका है। पिछले रविवार को डायरेक्टर साहब को खाने पर बुलाया था। उन्होंने भी मुझे यही सलाह दी है।' बलदेव ने आगे लिखा था यदि ईश्वर की कृपा रही तो

अगली बार वह अपनी गाड़ी में जम्मू आएगा ।' ठेकेदारी में रुपया कमाने के बहुत सारे गुर तो मुझे पहले से ही मालूम हैं। शेष एकाध धीरे-धीरे स्वयं आ जाएगा। कमला की इच्छा थी कि तुम कुछ रोज़ हमारे पास श्रीनगर आ जाओ।'

चिट्ठी पढ़ कर प्रसन्नता भी हुई थी और भय भी महसूस हुआ था। खुशी की बात थी कि अपना मित्र दुनियादारी के रास्ते पर आ रहा था। किन्तु जिस रफ्तार से वह नई राह पर चल रहा था उससे गिरने की भी आशंका थी। ...लेकिन फिर भी मैंने सोचा कि बलदेव जैसा समझदार आदमी सोचे समझे बिना कोई काम नहीं करेगा।

आज कमला द्वारा भेजे तार में बलदेव की आत्महत्या की खबर पाकर मुझे बार-बार बलदेव के अन्तिम पत्र के शब्द याद आए और विश्वास नहीं हुआ कि तार सच्चा हो सकता है।

OOO

तार गलत नहीं था। श्रीनगर में बलदेव की अंत्येष्टि करके इन्दिरा दीदी, भूषण और कमला भाभी लौट आए। मैं दो चार दिन उनके घर आता जाता रहा। बीच में एक महीने का अन्तराल आ गया। बलदेव की मां का विलाप और कमला भाभी के साथ गाली-गलौच सुनकर हार्दिक दुःख पहुंचता।

महीने बाद मैं उनके घर गया तो पता चला कि कमला भाभी ने अध्यापिका की नौकरी कर ली है और पप्पू के साथ बसोहली चली गई है।

OOO

अभी परसों की बात है, मैं पक्का डंगा से गुज़र रहा था कि कैमिस्ट की दुकान से कमला भाभी दवाएं खरीदती दिखाई दीं। उनका बुझा-बुझा चेहरा देख कर मेरी छाती में शूल-सा उठा। कहां वह फूल-सा खिला हुआ चेहरा और कहां अब परत-दर-परत उदासी। मैंने नमस्ते की और दुःखी मन से पूछा,—'ठीक तो हैं न ?'

'हां, मैं ठीक हूं पर पप्पू बीमार है। उसकी दवा लेने आई थी ?'

'इन दिनों छुट्टियां हैं ?'

'सप्ताह भर रह गया है।'

हम दोनों साथ चलने लगे। वे सामने देख रही थीं। और मेरी नज़र उनके चेहरे पर टिकी थी। भीतर ही भीतर मेरी रुलाई फूट रही थी। बिना बोले हम दीवान मन्दिर तक चले आए। मन्दिर से कुछ पहले, वे एक गली में मुड़ने लगीं तो मैंने कहा, 'कमला भाभी...।'

वे रुक गईं और थकी नज़रों से मेरी ओर देखने लगीं।

'भाभी, मैं आपका दिल नहीं दुखाना चाहता किन्तु एक बात पूछे बिना मुझ से रहा नहीं जा रहा।'

वे एकदम मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

'भाभी', सूखते गले से मैं बोला, 'बलदेव आपका पति था लेकिन वह मेरा भी बहुत कुछ था। मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि उसका अन्त इस प्रकार होगा। कमला भाभी, वह आदमी भला किस तरह ज़हर खा सकता है जिसे सृष्टि की सुन्दरता से प्यार था, जिसे जीवन पर अटल विश्वास था। असंख्य मुसीबतों से जूझते हुए भी उसने कभी हार नहीं मानी थी। मेरा दोस्त कभी इतना कमज़ोर न था, भाभी।'

कमला भाभी गुमसुम खड़ी थीं। उनकी आंखों में अपार वेदना थी। वे कुछ कहने लगी लेकिन उनके होंठ कांप कर रह गए।

'बोलो भाभी, बताओ मेरे दोस्त ने ज़हर क्यों खाया ?' मैंने उनकी बांह झिझोड़ कर कहा।

वे मेरी तरफ देखे जा रही थीं। उनके चेहरे पर वेदना, उदासी, घृणा और क्रोध की कई छायाएं फैलने लगी थीं।

'आपके मित्र ने ज़हर पी लिया।' उनके होंठ थरथरा रहे थे, 'उन्होंने अच्छा ही किया भाई साहब, वरन् क्या पता मुझे अपने हाथों उसे ज़हर देना पड़ता।'

'पर क्यों भाभी ? क्यों ?'

'भाई साहब', कमला भाभी ने कठिनाई से निश्वास छोड़ते कहा, 'पैसा कमाने वाले सभी लोग इज्जत बेचने वाले तो नहीं होते।'

यह कह कर वे एक पल में चली गईं।

मैं वहीं अवाक् खड़ा रहा।

मेरे सिर पर अंधेरी काली रात थी। □

माफी

मरने वाले ने जिस समय अन्तिम बार आंख खोली तो आकाश पर कुछेक तारे ही शेष थे। तकिये पर सिर टिकाए-टिकाए ही उसने आंगन में बिछी चारपाइयों को देखा। पास ही उसकी दसवीं कक्षा में पढ़ने वाली बेटी सुषमा सोई हुई थी। दूसरी खाट पर आठ वर्षीय पम्मी थी जो अपने से दो वर्ष छोटे राजू के गले में बांहें डाले गाढ़ी नींद में खोई हुई थी। उससे अगली चारपाई पर घर की नौकरानी दुर्गा खर्राटे ले रही थी। और घर की मालकिन कृष्णा, ड्राइंग रूम में पंखे के नीचे लेटी हुई थी। कृष्णा सोई हुई थी या जाग रही थी, वह नहीं जान सकता था। तकिए पर सिर टिकाए हुए वह केवल खुले किवाड़ों को देख सकता था, या पंखे की घरघराहट सुन सकता था।

मरने वाला कितनी ही देर, सोये हुए बच्चों, आंगन में पड़ी कुर्सियों, लोहे की तार से लटकते कपड़ों और रसोई के दरवाज़े के पास खड़े मौलसरी के वृक्ष की ओर देखता रहा। फिर उसने धीरे से करवट बदली। अब जिस ओर उसकी नज़रें पड़ी उधर गली में खुलने वाला दरवाज़ा था। किवाड़ों पर सांकल लगी हुई थी। फिर भी उसका कलेजा कांप उठा, आंखों में किरकिराहट होने लगी, शरीर अकड़ने लगा। जी हुआ कि पुन: करवट बदल ले और किसी भी हालत में दरवाज़े की तरफ न देखे।...किन्तु वह अडोल लेटा रहा। दरवाज़े के बाहर गली थी, गली के आगे और कई गलियां, फिर बाज़ार, सड़कें, लोग—एक फैला हुआ संसार जिसमें रह कर उसने भी पूरे चालीस वर्ष व्यतीत किए थे, जिसके करोड़ों लोगों में से कुछ हज़ार उसके नाम से परिचित थे। कुछ उसकी इज्ज़त भी करते थे लेकिन अधिकतर उसे दीनहीन

समझ कर उस पर तरस खाते थे। उससे पहले कृष्णा का नाम लेते थे और कृष्णा के नाम के साथ नामों की एक लम्बी फेहरिस्त जोड़ कर तरह-तरह की बातें करते थे।

'कितनी अजीब बात है ? मेरे घर के बारे में लोग मुझ से अधिक जानते हैं।' मरने वाले के होठों पर एक अयाचित, अनचाही मुस्कान आ गई ! पर फिर अचानक वह मुस्कान, उसके होठों पर पड़ी-पड़ी मर गई ! उसका मुंह कड़वे-कसैले स्वाद से भर गया। उसके हाथों-पैरों की नसें मरोड़ खाकर ग्रन्थियों में बदलने लगीं। शरीर में अकड़न आने लगी और आंखें मुंदने लगीं।...मगर उसने बंद होती आंखों को सप्रयास खोले रखा।

अब वह पुनः पीठ के बल लेट गया था और आकाश के बदलते रंगों को देख रहा था।

○○

वैसे तो कृष्णा और वह गत पन्द्रह वर्षों से एक ही छत्त के नीचे रहते आ रहे थे किन्तु विवाह के चार-पांच साल बाद ही उन दोनों में ऐसी दूरियां आ गईं जो दिनों-महीनों के साथ बढ़ती ही गईं। निरन्तर बढ़ती इस दूरी के कारण नौबत यहां तक आ गई कि उन्होंने एक दूसरे से बात तक करना छोड़ दिया। यह दूरी कैसे आई ? इसके लिए कौन उत्तरदायी था ?...इस बात का निर्णय वह कभी न कर सका। भला इस में कृष्णा का क्या दोष कि वह अपने विभाग में बहुत लोकप्रिय थी, बहुत से लोग उसे जानते थे, उसके अफसर उसकी इज्जत करते थे, बड़ें-बड़े लोगों में उसका उठना-बैठना था। उसकी प्रमोशन समय से पहले हो गई थी। कृष्णा अफसर बन गई थी। लोग सिफारिशें लेकर उनके घर के चक्कर लगाते थे, सौगातें पेश करते थे।...और वह अपने महकमे में अधिक तरक्की नहीं कर सका था। उसके अफसर उसके सामने मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा करते थे, उसे भला-मानुष कहते और समझते थे। लेकिन जिस मन से सभी उसकी पत्नी की प्रशंसा करते थे, वैसे शायद किसी ने कभी उसका गुणगान किया हो !

दूसरों से अपनी पत्नी की प्रशंसा सुन कर उसे सदा खीझ होती थी। घर कृष्णा से मिलने आए लोगों को देख कर उसके दिमाग में भिनभिनाहट सी होने लगती थी। ड्राईंग रूम में बैठी कृष्णा तथा उसके महकमे के तथा कई बार अन्य विभागों के अफसरों को गप्पें लड़ाते, ज़ोर से हंसते, चाय पीते और कई बार खाना खाते देखकर वह छत पर जाकर एक कोने में बैठा रहता था बाहर चला जाता। और देर रात जब लौटता तो दुर्गा से पता चलता कि कृष्णा तो कब की बाहर चली गई है। उस समय सुषमा उससे कहती, "पापा; मम्मी आप से बहुत नाराज़ हैं।'

'मम्मी कह रही थीं कि आपको मैनर्ज़ नहीं आते।'

सुषमा के मुंह से ऐसी बातें सुन कर उसे अपना आप अजीब लगने लगता। क्या सचमुच उसे मैनर्ज़ नहीं हैं? क्या वह चार लोगों में बैठ कर बात नहीं कर सकता? और उसका प्रमोशन? एक दिन सुषमा ने उसे बताया था कि कृष्णा ने उसके प्रमोशन के लिए किसी से कहा हुआ है। तब वह रात भर सोचता रहा था कि उसकी तरक्की के लिए भी कृष्णा को ही कोशिश करनी होगी। क्या वह अपनी घर वाली की सिफारिश पर अफसर बनना पसन्द करेगा? ऐसे ही कई प्रश्न उसके दिन-दिमाग में हर समय उठे रहते। उसे अपना आप बहुत तुच्छ, साधारण और दीन हीन लगने लगता। लगता, वह मर्द कहलाने के काबिल नहीं है। मिट्टी का माधो है। इस घर में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। उसकी नज़र दरवाज़े पर लगी नेम-प्लेट पर चली जाती—कृष्णा भारद्वाज, इन्स्पैक्ट्रेस। 'यह घर मेरा नहीं कृष्णा का है।' यह सोच कर वह खोखली हंसी हंसता। फिर गम्भीर होकर अपने मन में दृढ़ संकल्प करता कि कृष्णा के बाहर से आने पर वह उसके पास जाएगा। उससे बात करेगा। उससे माफी मांग लेगा। लोग उसके बारे में क्या-क्या बातें करते हैं इसकी बिल्कुल परवाह नहीं करेगा। लेकिन यह अवसर कभी नहीं आ पाया। कृष्णा को देखते ही उसे महसूस होता कि उसकी आंखों में, और उसके मन में उसके प्रति मात्र घृणा और हीन भावना के और कुछ शेष नहीं। यह सोच कर वह डगमगा जाता। कृष्णा की तरफ बढ़ते कदम रुक जाते। उसे पुनः विचार आता कि वह कृष्णा के योग्य नहीं। यदि कृष्णा ठाठें मारते सागर की तरह थी तो उसकी स्थिति समुंद्र की लहरों पर डूबते-उतरते तिनके समान थी। कृष्णा विस्तृत आकाश थी तो वह

उस अपार विस्तार में विलीन होता एक अचीन्हा पक्षी था। क्या हुआ जो वह कृष्णा से अधिक पढ़ा लिखा था। डिग्रियां एकत्र कर लेना और बात है, और दुनिया में सफल सिद्ध होना अलग बात है। वह असफल था, साधारण था घटिया था। उसे दुनिया में रहना, संघर्ष करना, लगातार आगे बढ़ते जाना नहीं आया या ऐसे कह लें, यह दुनिया ही उसकी नहीं थी। कम-से-कम वह यही सोचता था।

पूरे छह वर्ष पहले, कुछ दिनों और हफ्तों के अन्तराल से, दो खास बातें हुई थीं ! उनमें एक थी उसकी तरक्की और दूसरी राजू का जन्म। घर में दो खुशियां हुई थीं। सगे संबंधियों का कहना था कि बेटा सौभाग्यशाली है ! और वह ? उसने उस कमरे में कदम नहीं रखा था जहां कृष्णा जापा काट रही थी। चालीसवें रोज, जब दुर्गा ने आकर राजू को उसकी गोद में डाला था तब पहली बार उसने अपने बेटे को देखा था। एक नज़र उस पर डाल कर उसने ड्राइंग रूम के दरवाज़े में कुर्सी डाल कर धूप में बैठी कृष्णा की तरफ देखा था। कृष्णा की आंख पल भर के लिए ही उस से मिली थी और वह क्रोध से उठकर भीतर चली गई थी। न केवल यह, उसने दुर्गा से कहलवा कर बेटे को भी भीतर मंगवा लिया था। उस दिन पहली बार पानी का गिलास उसके हाथ से छूट गया था और उसे चक्कर आ गया था।

उसके बाद एक दिन भी वह स्वस्थ नहीं रहा। उसके विचारों में एक स्थायी बिखराव आ गया। शरीर की नसें हर वक्त तनी रहतीं। कई दिन पहले वह अमृतसर गया था डाक्टरों ने उसका निरीक्षण करने के बाद कहा था कि उसके दिमागमें 'टयूमर' बन गया है और यह रोग लाइलाज है।

○○

आकाश पूर्ववत् काला था, फिर सुर्मई हुआ और अब मैला-सा उजास फैल रहा था। वह चिड़िया जो प्रतिदिन इस समय कहीं से मौलश्री के पेड़ पर आ बैठती थी आज भी आ चुकी थी। उसकी चहचहाट पंखे की 'घर्र-घर्र' के बावजूद सुनाई दे रही थी। अनायास बयार तेज़ चलने लगी। मरने वाले ने पल भर अपने माथे से दूर ऊपर चमकते तारे की ओर देखा।...फिर बड़े उद्यम से बिस्तर से उठ बैठा। जाने उसे कैसे आभास हो गया था कि अन्तिम विदा की बेला अब अधिक दूर नहीं है।

कांपती टांगों, झूलते शरीर से, अपने आप को बड़े श्रम से सम्भालते वह उन चारपाइयों के सामने आ खड़ा हुआ जहां बच्चे सो रहे थे। राजू के जन्म के बाद उसने एक बार भी उससे दुलार से बात नहीं की थी। उसके मन में तीनों बच्चों के लिए दिनोदिन वितृष्णा और उदासीनता बढ़ती गई थी जिसे स्वयं बच्चे भी जान गए थे।

सामने खड़ा वह सोई हुई बेटियों को देखता रहा। उसकी आखें भीग आईं। कांपते हाथ हवा में उठे और एक दूसरे से जुड़ गए। दो पल वह वैसे ही खड़ा रहा और फिर बड़ी मुश्किल से नीचे झुक कर उसने राजू का सिर सहलाया।

अब वह डगमगाता ड्राइंग रूम की ओर जा रहा था।

कृष्णा पलंग पर सोई हुई थी। उसकी साड़ी उसके शरीर से सरक गई थी। गहरी नींद में सोई कृष्णा उसे बहुत सुन्दर, मासूम और सूर्य की पहली किरण की तरह पवित्र लगी। दरवाज़े का सहारा लिए खड़ा, वह उसे एकटक देखता रहा।

जी हुआ, कृष्णा को जगाए, दो चार बातें करे। कुछ पूछे, कुछ सुनाये। पर वह ऐसा कुछ न कर सका। अचानक उसका दिमाग फटने लगा, शरीर में कंपकपी दौड़ने लगी। लगा, यदि एक पल भी खड़ा रहा तो गिर पड़ेगा। डगमगाते पैरों से वह वापिस अपने बिस्तर पर आ गया और अपने शरीर पर चादर तान ली।

'नहीं...ई...ई...उसके होंठ पल भर के लिए थरथराए। उसने देखा, मौलश्री के पेड़ से डरी सहमी चिड़िया उड़ गई है, उड़ती जा रही है—दूर आकाश में। वह तारा जो उसके माथे के बिल्कुल ऊपर चमक रहा था, मद्धिम होता गया। विलीन होता गया। अदृश्य हो गया। फिर देखते-देखते उस तारे के स्थान पर एक रक्तरंजित सुर्ख क्रास उभर आया।

'यह सलीब किस की है? कौन उठाएगा इसे कंधों पर? उसके सुन्न पड़ते दिमाग में एक प्रश्न-चिह्न बना और फिर तत्काल उसे लगने लगा, उसके हाथों से, बांहों से, छाती से, जांघों से लहू बह रहा है, बहता जा रहा है।

सूर्य की पहली किरण अभी धरती से कई कोस दूर थी। मरने वाले के दोनों हाथ हवा में उठे, एक दूसरे से जुड़े और छाती पर टिक गए।

ड्राइंग रूम से पंखे की घरघराहट की आवाज़ लगातार आ रही थी। □

जूते

'वही आदमी है। लड़की भी वही है। हां, लड़की की गोद में जो बच्चा है वह साल भर पहले नहीं था।' जूतों की रखवाली करने वाला बूढ़ा शंकर मंदिर के भीतर जाते उस बाबू और उसकी पत्नी को देख रहा था जो अभी-अभी अपने जूते खोल कर उसके पास छोड़ गए थे।

उसने नये चमचमाते बूट में वही नम्बर डाला जो उस बाबू को दिया था और फिर उन बूटों, एक जोड़ी बढ़िया सैंडिलों तथा वनबिलाव की खाल के नन्हें जूतों को एक ही खाने में रख दिया।

'बुढ़ापे के कारण कहीं गलती तो नहीं लग रही।......लेकिन शक्लें तो वही हैं।' शंकर अपने 'बिन्ने' पर बैठ कर बीड़ी पीने लगा।' अगर ये वही हैं तो ईश्वर का शुक्र है, घर बस गया।...एक ही खाने में तीन जोड़ी जूते पड़े हैं। वरन् न जाने क्या गज़ब हो जाता। बूटों वाले का खून हो जाता और सैंडिल वाली रो-रोकर मर जातीं! जूते वाले को फांसी हो जाती थी और वन बिलाव की फर के नर्म जूते किसी और के पैरों में होते।'

'लो भई, बूट सम्भालो।' शंकर के विचारों की लड़ी सामने खड़े आदमी की आवाज़ से छूट गई।

'बाइस नम्बर?'

'जी।' शंकर ने बाईस नम्बर का गत्ता सामने खड़े बाबू के चित्तकबरे बूटों में डाला और उन्हें बाईस नम्बर के खाने में रख दिया। स्वयं फिर बिन्ने पर आ बैठा।

'यदि वह लड़की सावित्री ही थी तो उसने मुझ से बात क्यों नहीं की ? मुझे पहचाना क्यों नहीं ! यह तो असम्भव है कि वह एक वर्ष पहले की घटना भूल गई हो ।

'ये जूते रखें ।'

वह ख्यालों से पुन: उभर आया । उसके हाथ में देसी चमरौधे थे जिसे उसने तेईस नम्बर का गत्ता दिया । वह कोई ग्रामीण युवक था । एक पल वह चमरौधे देखता रहा, फिर उन्हें एक खाने में रख दिया । बीड़ी सुलगा कर वह फिर अपने स्थान पर आकर बैठ गया ।

कैसी विचित्र बात हुई थी साल भर पहले । गत बीस वर्षों से वह मन्दिर में दर्शनार्थियों के जूते सम्भालने का काम करता आ रहा है किन्तु वैसी घटना पहले कभी नहीं घटी थी । शिवरात्रि थी तब । बहुत काम था । सैंकड़ों जोड़े जूते रख-रखकर और लौटा-लौटा कर वह थक गया था । रात के दस हो चुके थे । धीरे-धीरे जूतों वाले सभी खाने खाली हो गए थे । केवल दो जोड़ी रह गए थे । इनमें था एक कीमती बूट और दूसरी मैली कुचैली चप्पलें । 'जाने अन्दर क्या कर रहे हैं यह दोनों । आएं तो मेरा काम निपटे ।' उसने उन जूतों के मालिकों की प्रतीक्षा में न जाने कितनी ही बीड़ियां फूंक डालीं । रात के ग्यारह बज रहे थे । मन्दिर के भीतरी किवाड़ भी बन्द हो गए थे । लेकिन न बूटों वाला आया न चप्पल वाला । चौकीदार मुख्य द्वार बन्द करने आया तो शंकर ने कहा था, 'अभी दरवाज़ा बन्द न करना । दो जने मन्दिर के अन्दर हैं अभी ।

'मन्दिर के अन्दर तो अब कोई नहीं । चौकीदार ने यह कह कर उसे और परेशान कर दिया था । उसने, चौकीदार ने, मन्दिर के पुजारियों, महन्त जी और पाठशाला के विद्यार्थियों ने मन्दिर का कोना-कोना छान डाला था । सारी परिक्रमाएं देख डाली थीं पर उन दो मरद्दों में से एक भी दिखाई न दिया । देर तक वे यही सोचते रहे कि वे दोनों नंगे पैर मन्दिर से बाहर कैसे गए होंगे ? बात क्या थी ? हुआ क्या था ? लाख सिर खपाने पर भी जब कोई कुछ न समझ सका तो शंकर कमरे को ताला लगा कर घर चला गया था । 'ज़रूरत हुई तो कल आकर ले जाएंगे ।' यह सोच कर उसने उस रात तसल्ली कर ली थी और सो गया था ।

दूसरे दिन वह मुंह अंधेरे ही मन्दिर चला आया था कि शायद कोई जूते लेने आए। मगर उस दिन भी देर रात तक दोनों में से कोई नहीं आया था।

मन्दिर के सभी लोग आश्चर्य चकित थे। कोई समझ नहीं पा रहा था कि वे दोनों कहां चले गए। सम्भव था दोनों मन्दिर की पिछली ड्योढ़ी से निकल गए हों किन्तु उन्हें नंगे पांव जाने की क्या ज़रूरत थी! ऐसी भी क्या जल्दी थी!'—सभी सोच-सोच कर हार गए।

तीसरे दिन इससे भी अनोखी बात हुई। सत्रह-अठारह साल की एक ग्रामीण लड़की शाम को आई और अपनी जूतियां उतार कर मन्दिर के भीतर चली गई।……रात के ग्यारह बज गए लेकिन वह जूतियां लेने नहीं आई।

इससे पहले दो खाने रुके हुए थे अब तीसरा भी रुक गया। रुआंसा होकर शंकर बड़े पुजारी जी के पास गया और उन्हें सारी बात सुनाई।

अजीब परेशानी थी। जूते खानों में पड़े रहते और पहनने वाले गायब हो जाते। एक बार फिर सभी मन्दिर का एक-एक कोना, एक-एक परिक्रमा देखने लगे।

इस बार उनकी तलाश व्यर्थ नहीं गई। राधाकृष्ण के मन्दिर के एक कोने में घुटनों पर सिर रखे बैठी वह लड़की मिल गई।

'कौन हो तुम? यहां बैठी क्या कर रही हो?' पुजारी जी ने क्रोध भरे स्वर में उससे पूछा। पर लड़की ने घुटनों से गर्दन नहीं उठाई। वे सभी भयभीत हो गए। आशंकित नज़रों से कुछ पल देखकर पुजारी जी आगे बढ़े और उन्होंने लड़की के सिर को हिलाया।

लड़की जीती जागती थी। उसकी आंखें रो-रोकर सुर्ख हो गई थीं। भर्राए गले से वह इतना ही बोल सकी थी, 'मैं मर जाऊंगी। भगवान् के सामने रो रोकर प्राण दे दूंगी।'

यह कह कर वह बेहोश हो गई थी। दो लड़कों ने उसे खाट पर डाला और उठाकर पुजारी जी के कमरे में ले गए। सारी रात पंडिताईन उसके सिरहाने बैठी रहीं। अगले रोज़ लड़की को होश आया तो असल बात का पता चला था। आंसुओं की झड़ी में उसने बताया कि उसका नाम सावित्री है, उसका घर बसोली के पहाड़ों में है और वह अपने भाई के साथ शहर आई है। उसके

पति का नाम शान्ति स्वरूप ठेकेदार है, जिसने उससे गांव में ब्याह किया था। पर ब्याह के दो महीने बाद वह वहां से लौट आया था। फिर न ही उसने कोई पत्र डाला और न उसकी कोई खोज़ खबर मिली। आखिर छह महीनों के इन्तज़ार के बाद वह अपने भाई के साथ उसे ढूंढने शहर आई थी। दो दिन वे धर्मशाला में रुके। शहर की एक-एक गली छान डाली पर ठेकेदार नहीं मिला। परसों शाम, जब वह धर्मशाला में सोई हुई थी तो उसका भाई भी उसे छोड़ कर चला गया।

शंकर के कमरे में अलग-अलग खानों में पड़े उन तीन जोड़ी जूतों की कहानी अब सभी समझ गए थे। असल में वे तीनों जोड़ी जूते एक ही खाने में रखे जाने चाहिए थे। लेकिन किस्मत को जाने क्या मंजूर था। सभी का यही अनुमान था कि लड़की का भाई मंदिर आया होगा, उसने ठेकेदार को मन्दिर में देखा होगा। ठेकेदार ने आंख बचा कर खिसकने की सोची होगी। उसके पीछे लड़की का भाई भी भागा होगा और फिर वे दोनों दूसरी ड्योढी से निकल कर सड़क तक पहुंच गए होंगे। फिर उसके बाद कहां गए ? वे जीवित हैं या मर गए ? कोई ठीक से समझ नहीं पा रहा था। विचार-विमर्श के बाद सभी इसी नतीजे पर पहुंचे कि एक दिन की प्रतीक्षा करके सारे मामले की पुलिस में रपट करा दी जाए।

लेकिन रपट की नौबत ही नहीं आई। चौथे दिन शाम को उन जूतों के मालिक आ गए। दोनों का बुरा हाल था। दोनों के कपड़े तार-तार हो गए थे, पैर सूजे हुए थे। ठेकेदार के नाक-मुंह पर चोटों के निशान थे। उनके आने की खबर सुन कर सावित्री भी शंकर के कमरे के पास आ गई।

उन्हें देखकर बहुत लोग जमा हो गए। पुजारी जी और महन्त जी उनसे पूछ रहे थे कि उनका यह हाल कैसे हुआ ? वे कहां चले गए थे ?

दोनों में से कोई भी जवाब नहीं दे रहा था। हां, सभी के सामने लड़की के भाई ने अपनी बहन का हाथ ठेकेदार के हाथ में थमाया और लड़की से कहा, 'लो सावित्री. अब यह कहीं नहीं भागेगा। यदि इसने तुझे तंग किया, बुरा भला कहा या दो दिन के लिए भी घर से गायब रहा तो मुझे चिट्ठी डाल देना। फिर मैं जानूं और यह जाने।'

इसके बाद उन तीनों ने अपने जूते पहने और मन्दिर से चले गए।

○○

शंकर अब उस खाने की तरफ देख रहा था जहां वे तीन जोड़ी जूते पड़े हुए थे। भगवान् का शुक्र है कि इनका घर बस गया।

कुछ देर बाद उन जूतों के मालिक आ गए और जूते पहन कर चले गए।

शंकर से सावित्री की केवल यही बात हुई कि सब ठीक है और ठेकेदार ने उसे तीस पैसों के स्थान पर दो रुपये का नोट दिया था।

○○

रात के दस बज चुके थे। शंकर कमरा बन्द करने ही लगा था कि उसकी नज़र दायीं तरफ वाले खाने पर पड़ी और वह कांप उठा।

बाईस नम्बर के खाने में एक चित्तकबरा बूट और उसके ऊपर तेईस नम्बर में देसी चमरौधों की जोड़ी पड़ी हुई थी।

'हे भगवान् ! कहीं······?' उसने पास से गुज़रते चौकीदार को आवाज़ दी, 'क्या वक्त हुआ है चौकीदार ?

'ग्यारह होने वाले हैं।'

मन्दिर में दो आदमी हैं अभी ?

'पता नहीं'

'ओ जा कर पता करना यार।' शंकर ने हड़बड़ाहट में कहा और घबराई हुई नज़रों से सामने खाने में पड़े दो जोड़ी जूतों को देखने लगा। □

सांप

सांप ने फन उठा लिया था। मेरे अन्तर्मन में उस कमरे के अंधेरे से कहीं अधिक गहन अंधकार था। मगर उस अंधेरे में भी मैं अपने भीतर के विषधर की जलती आंखें देख सकता था। उसकी लपलपाती जीभ मेरे गले से बाहर लपक रही थी। उसकी फुफकार की सां-सां मेरी सांसों में समा गई थी। पर अभी उसकी पूंछ मेरी आत्मा के पत्थर तले दबी हुई थी। मैं जानता था, पत्थर के नीचे दबी उसकी मुलायम दुम तिल-तिल सरक रही है और उसकी गर्दन ऊपर उठती जा रही है। मैं भय से कांप रहा था लेकिन यह कंपकंपी तभी तक थी जब तक सांप की दुम पूरी तरह मुक्त नहीं हो जाती। एक बार सांप छूटने की देर थी मुझे ज्ञान ध्यान, लोक-लाज, पाप-पुण्य सब भूल जाना था। फिर तो मुझे इस बात का भी ख्याल नहीं रहेगा कि साथ वाले कमरे लोगों से खचाखच भरे पड़े हैं और बीस-पच्चीस हाथ दूर विराजमान शिवजी महाराज अपनी आंखों से मेरी सब करतूतें देख रहे हैं। और इस मन्दिर से कोई दो सौ हाथ दूर सुद्ध महादेव का चौगान जाग रहा है, और चौगान के इस कोने से उस कोने तक मेले में आए लोक-गायकों के सैंकड़ों गीत हवा पर सवार होकर आसपास की पहाड़ियों पर उड़ान भर रहे हैं। मैं अपने आपको जानता था और मुझे उन क्षणों की आकृतियां भूली नहीं थीं जो कभी अबोध बच्चों की भांति मेरे जीवन के आंगन में खेलने आए थे, पर जिन्हें मेरी छाती के भीतर बैठे इस विषधर ने इस निर्दयता से काटा था कि वे क्षण भर में नीले पड़ गए थे और उनके शवों का असहनीय बोझ उम्र भर के लिए मेरे कंधों पर आ पड़ा था।

कमरे का दरवाज़ा मैं कब का बन्द कर चुका था। किवाड़ लगाने से

पहले मैंने यह बात निश्चित कर ली थी कि कमरे में प्रवेश का कोई अन्य रास्ता नहीं है। ......दरवाजा बन्द करने पर भीतर अंधेरा छा गया था किन्तु फिर भी किवाड़ों की झिरियों से भीतर आती कुछ चांदनी फर्श पर वृत्त-सा बना रही थी। वह चांदनी के उसी वृत्त में सो रही थी। उसके जवान जिस्म का ऊपरी भाग उसी रोशनी में था। निचला भाग अन्धेरे में था। वह इतनी गहरी नींद में थी कि उसे मेरे आने की, भीतर आकर कमरे की एक-एक दीवार, एक-एक कोने को टटोलने की और दरवाज़े पर सांकल चढ़ाने की तनिक खबर नहीं हुई। यह सब काम समाप्त करके मैं उसके पास बैठ गया। भीतर कुछ ठंड थी लेकिन मेरे माथे पर पसीना आ गया था। मुझे भय था कि मेरी सांसों की सां-सां से उसकी नींद न खुल जाये। लेकिन वह इस बेहोशी से सोई हुई थी कि जल्दी ही मेरा यह डर जाता रहा। मैं कितनी ही देर अपनी अनियंत्रित होती सांसों को रोककर उसे देखता रहा। उसके सिर से आंचल ढलक गया था। उसके बालों में फंसे मोतिए के हार की सुगंध हवा में नशीली महक बिखेर रही थी। उसकी आंखें बन्द थीं लेकिन आंखों में कजले की धार, ओठों की लाली, सुतवां नाक के कील की चमक सब सजीव लग रही थी। उसके कोमल गले में सफेद मोतियों की वही माला थी जो उसने अपनी सहेलियों के संग शाम को खरीदी थी। हरी चूड़ियों से भरी उसकी एक बांह माथे पर आ गई थी और दूसरा हाथ छाती पर धरा था। मैंने दो-तीन बार उसके बाल सहलाए और आश्वस्त हो गया कि वह आसानी से जागने वाली नहीं।

उसका नाम क्या था? वह कौन थी? कहां से आई थी—इन बातों का मुझे बिल्कुल पता नहीं था। मैंने शाम को उसे मेले में घूमते देखा था और जब से मैंने उसे देखा था वह मेरी आंखों में समा-सी गई थी। वह अपनी सहेलियों के साथ जिस किसी दुकान पर गईं, मैंने परछाईं की तरह उनका पीछा किया। उन्होंने बिजली से चलने वाले यंत्र से अपनी कलाइयों पर अपने और अपने प्रेमियों के नाम खुदवाए। चूड़ियां चढ़वाईं। हार खरीदे। शर्बत पिया। पहाड़ से लाई बर्फ खाई। झूलों पर झूलीं। सभी ने पैसे डालकर इत्र की एक शीशी खरीदी और एक-दूसरे के कपड़ों पर छिड़क-छिड़क कर उसे खाली कर दिया। शाम हुई तो अड्डे पर सिनेमा देखा। शहर से आए कवियों के गीत सुने—और फिर थक कर वे चौगान में आ बैठीं। कुछ देर उन्होंने एक दूसरे की चोटियां खींचीं, बेमतलब ठहाके लगाए, सिगरेट पीने वालियों ने खूब कश लगाए और फिर सभी ने अपने-अपने कानों पर हाथ रख लिए और गर्दनें झुका कर लोक-गीत गाने लगीं।

वे अपने जैसी सजीली पहाड़ी बालाओं की सुन्दरता के गीत गा रही थीं। पहाड़ों पर गूंजती बांसुरी की टेर के गीत गा रही थीं। मोतियों के उस सतलड़े हार के गीत गा रही थीं जिसे अपनी प्रेम-निशानी कह कर एक बंजारा गोरी को दे जाता है और जिसका एक मोती कहीं खो गया है।—उनके सुरों में झरनों की 'कल-कल' थी। उनके गीतों में सच्चे प्रेम पर मर मिटने के वायदे थे। गीत गाते हुए जब वे नज़रें मेरी तरफ उठतीं तो मेरी नसों में लहू उबलने लगता। मुझे लगता मेले में गाए जाने वाले सभी गीत मेरे और उसके प्रेम पर बने हैं। मानों गीतों की गोरी कोई और नहीं वह स्वयं थी और मोतियों की लड़ियों वाला बंजारा वह मुझे समझती है।

मेला अपने यौवन पर था। रात का तीसरा पहर था जब मैं कुछ क्षणों के लिए वहां से उठा। मेरे सिगरेट खत्म हो गए थे। डिब्बी लेकर लौटा तो वह गायक मण्डली में नहीं थी। उसकी सहेलियां एक दूसरे से ऊंची आवाज़ में बातें कर रही थीं, उनकी बातों से मैं इतना भर जान सका कि वह उन्हें बुरा भला कह कर सोने के लिए मन्दिर चली गई थी। अब मेरा वहां बैठना व्यर्थ था। मैं वहां से खिसक आया। कितनी देर मैं उसे मन्दिर में सोये लोगों में तलाशता रहा और अंत में मैं उसे ढूंढ लेने में सफल हो गया।

वह मानो अपनी लाज परमेश्वर को सौंप कर सो रही थी। मैं उसे प्यासी नज़रों से देखता रहा। ज्यों-ज्यों पल क्षण बीत रहे थे मेरे शरीर की भूख सुलग रही थी। और फिर मुझे एक आवाज़ सुनाई दी। 'गड़गड़' करता मेरी आत्मा का पत्थर एक तरफ लुढ़क गया। सांप की पूंछ छूट चुकी थी। मेरे आतुर हाथ उसकी ओर लपक रहे थे।

लेकिन इससे पहले कि मैं रूमाल से उसका मुंह दबोच सकूं, कमरे की छत्त फाड़ती एक चीख हवा को चीर गई। वह जाग गई थी और लगातार चिल्लाए जा रही थी—'ओ लोगो, बचाओ बचाओ।'

वह खड़ी हो गई। उसने अपने कठोर हाथ में मेरी बांह पकड़ ली थी और शेरनी की तरह गरज रही थी, 'तूने मुझे क्या समझा था? अकेली जान कर तू मुझे लूटने आया था। मेरे सात भाई हैं। जिसने मेरी मांग भरनी है वह फौज में सिपाही है। मैंने तेरे टुकड़े न करवा दिए तो कहना मैं ठाकुरों की नहीं किसी निपूते घर की बेटी हूं।' जाने वह क्या-क्या कह रही थी। मेरा ध्यान

उसकी बातों की तरफ बिल्कुल नहीं था। दरवाज़े के किवाड़ भड़भड़ाते लोगों की आवाज़ें मेरे कान फाड़ रही थीं। मेरी टांगें जवाब दे रही थीं।

'दरवाज़ा खोलो।'

'अन्दर कौन है ?'

'कोई गुंडा घुस गया है भीतर।'

'बदमाश के टुकड़े कर डालो।'

अब वह मेरे अचेत होते शरीर को धकेल रही थी। मैं उसे वास्ते दे रहा था। शिवजी महाराज का नाम ले लेकर उससे विनय कर रहा था कि मुझे छोड़ दे, कि मैं नीच हूं, दुष्ट हूं, रोगी हूं।—और वह उन पहाड़ों की कूंज है जो मुझ जैसे रोगियों को सदैव नई सांसें बख्शते आई हैं। मैं उसके आगे हज़ार-हज़ार हाथ जोड़ रहा था लेकिन वह मेरी एक न सुन रही थी। वह मुझे खींच रही थी और खींचते-खींचते जब उसने चांदनी के उस वृत्त में मुझे खड़ा किया तो जलती आंखों से मुझे घूरा।

'पशु'। उसने कांपते होठों को काटा और हाथ बढ़ा कर दरवाज़े पर लगी सांकल खोल दी।

किवाड़ खुल गए थे। मेरी सहमी आंखों के सामने लोग ही लोग थे। अब तो स्वयं मुझे भगवान् भी नहीं बचा सकता। सैंकड़ों बांहें मेरी तरफ़ लपक रही थीं—'काट डालो इस बदमाश को। कुचल दो इस लफंगे को।'

'हां, मुझे मार दो। मुझे कुचल दो।' मैं डूबती सांसों से कह रहा था। —फिर कई लोग आगे बढ़े। असंख्य हाथों ने मुझे गले से पकड़ लिया। पर इससे पहले कि मेरा दम घुट जाता और मेरे शरीर के चीथड़े उड़ जाते, उसने लोगों को धकेल कर परे हटाया और मुझे अपनी तरफ खींच लिया।

'ये तो मेरे साथ है।'

'तो तुम चिल्लाई क्यों थी ?'

पर उसने लोगों को कोई जवाब नहीं दिया। और मुझे खींचती हुई मन्दिर से नीचे ले गई।—फिर चौगान के पास पहुंच कर उसने मेरी बांह छोड़ दी और अत्यंत घृणा से मेरी तरफ देख कर मेले की भीड़ में खो गई।

आकाश पर कोई-कोई तारा ही बचा था। हवा में, मुरदे में नवजीवन भरने वाला, जादू बिखरा हुआ था। पर मेरा मरियल जिस्म शेर वाले 'बम्बे' की तरफ जा रहा था।

चलते-चलते अचानक मैं घबरा कर बैठ गया। मेरा जी मचलने लगा। कै-सी आने लगी थी।—और फिर मैंने एक उल्टी की। मुझे लगा, मेरी छाती खाली हो गई है। जैसे एक कै के साथ मेरे भीतर का विषधर बाहर आ गया है।

मैं उठ पड़ा। अब मैं बहुत हलका होकर चल रहा था। मुझे चारों तरफ फैली प्राकृतिक छटा हंसती गाती महसूस होने लगी थी। आसपास बहते नालों की कल-कल मेरे भीतर स्फूर्ति भर रही थी। अपने में खोया मैं कितनी ही देर चलता रहा। शेर वाला 'बम्बा' कई मील पीछे रह गया था। मैं सामने पहाड़ियों की तरफ देख रहा था जिनकी छातियों पर प्रभात अपना रूप बिखेर रही थी।

चलते-चलते मैं एक टीले के पास पहुचा। टीले पर लगभग बाईस वर्षीय एक औरत खड़ी थी। वह इतनी सुन्दर थी कि मैं रुक गया। वह क्षण भर मेरी ओर देखती रही और फिर उसे जाने क्या हुआ कि वह हंसने लगी। फिर वह वृक्षों के घने झुरमुट की तरफ भाग गई।

मैं कुछ पल जड़वत खड़ा रहा। फिर मैं आगे बढ़ा। अभी कुछ कदम ही उठाए थे कि मेरे पैर रुक गए। मैं पीछे मुड़ा।--अब मैं उस टीले पर चढ़ रहा था और मेरी सांसों में फिर वही फुफकार सुनाई दे रही थी।

मेरे भीतर का विषधर अभी जीवित था। □

एक लटकती लाश

मेरी आंखों के आगे अपने ननिहाल के पिछवाड़े वाला घना, ठंडी छांह बिखेरता, मिसरी जैसे बेरों से लदा, छत्त से ऊंचा वही पेड़ घूम रहा है। और साथ ही मेरी नज़रों के सामने उस पेड़ से लटकती एक लाश घूम रही है। —एक जवान लड़की की लाश जिसने हरे रंग का कुर्ता और सुत्थन पहन रखी है, और सिर पर उसी रंग की मुक्कैश वाली चुनरी ओढ़ रखी है।

जानती हूं यह लाश मग्गो मौसी की है और उसे मरे हुए बारह वर्ष हो गए हैं। फिर भी जाने मुझे क्या होता है कि तनिक आंखें बंद करने पर मेरे भीतर वही पेड़ आ खड़ा होता है। उस पेड़ से रस्से से लटकी लाश ज़ोर-ज़ोर से झूलने लगती है। पल भर बाद लाश की आंखें खुल जाती हैं और मग्गो मौसी के चेहरे पर वही परिचित मुस्कान फैल जाती है। वह अपनी गर्दन फन्दे से निकाल कर एक सब्ज़ परी की तरह धीरे-धीरे ज़मीन पर उतर आती है और मुझ से कहती है, "ले कुन्तो, अब तेरी बारी है झूला झूलने की।" और मैं उसका कहना मान कर फंदा अपने गले में डाल लेती हूं और मग्गो मौसी रस्से का दूसरा सिरा खींचने लगती है। मेरा शरीर धरती से उठने लगता है और ऊपर खिचता चला जाता है। फिर मेरी गर्दन की नसें फूल जाती हैं, सांस घुटने लगती है, मुंह से झाग निकलने लगती है। मेरी आंखें पथरा जाती हैं। ...और इस प्रकार मग्गो मौसी की लाश की जगह मेरा शव बेर के उस पेड़ से लटकने लगता है।

आज मैं अठारह साल की हूं। तब मुश्किल से मेरी आयु छः वर्ष थी जब अठारह वर्षीय मग्गो मौसी ने फांसी लगा ली थी। इस घटना को घटे बारह

वर्ष बीत चुके हैं लेकिन मेरी आंखों के आगे वह दृश्य आज भी इस तरह घूम रहा है मानो मैं उसे याद नहीं कर रही प्रत्यक्ष देख रही हूं। बरसों मेरे साथ ऐसा हुआ है कि मैं गाढ़ी नींद में सोई हूं और मेरे मस्तक के भीतर काले साये घूमने लगे हैं। और फिर वे परछाइयां तेज़ गति से एक दूसरे में घुल मिल कर एक कद्दावर वृक्ष में बदल गई हैं। फिर कहीं से धूल भरी आंधी उठी है। वृक्ष से मोटे-मोटे पके बेर टपकने लगे हैं। मैं जमीन से बेर उठा कर अपनी झोली में डाल रही हूं। अचानक मेरी नज़र ऊपर की ओर जाती है और मेरे मुंह से जोरों की चीख निकल जाती है। ऊपर एक मोटे रस्से से बंधी, हवा में झूलती मग्गो मौसी की लाश है। उस लाश की आंखों की पुतलियां उलट गई हैं, जबान बाहर खिच गई है और मुंह से झाग निकल रही है। यह सब मेरे साथ नींद में ही नहीं भरी दोपहरी भी घटता रहता था। मैं अच्छी भली होश में होती, स्कूल की किताबें पढ़ रही होती या तस्वीरें देख रही होती। यदि किसी ऐसी तस्वीर पर नज़र पड़ जाती जिस में कोई वृक्ष हो और उस पर कोई चढ़ा हो तो फिर बस्स ..एकाएक मेरी आंखों के सामने ननिहाल के पिछवाड़े वाले वृक्ष से लटकती मग्गो मौसी की लाश घूमने लगती। मेरा सारा शरीर ठंडा पड़ जाता। पल भर में कपड़े ठंडे पसीने से भीग जाते, दांत भिच जाते और मैं बेहोश हो जाती।

मेरी यह हालत देखकर पिता जी ने शहर के बड़े डाक्टरों को दिखाया था। बहुत इलाज करवाया मेरा। मेरी अम्मां ने मुझे कई साधू-सन्तों, पीरों-फकीरों से भभूत लाकर दी थी। देवी-देवताओं के आगे मन्नतें मानी थीं। घर में हवन करवाए थे। मग्गो मौसी के नाम पर दान-पुन्न करवाया था। ननिहाल जाकर बेर के उस वृक्ष पर धागे बांधे थे, चुनरी चढ़ाई थीं, गठरियां टांगी थीं। पर यह सब मेरी आंखों से बेर के उस वृक्ष और उससे लटकती मौसी की लाश के दृश्य को सोख न सके।

फिर मेरे साथ यह सब घटित होना बन्द हो गया। मुझे याद है जिस साल मैं आठवीं कक्षा में आई थी, उसके बाद न ऐसे सपने आए और न ही मैं कभी बेहोश हुई।

और अब जब कालेज में पढ़ने वाली अठारह वर्षीय समझदार युवती हूं, मैं हर बात अच्छी तरह सोच समझ सकती हूं। कई बार सोचा है कि उस मग्गो मौसी ने, जो मेरी तरह जवान और सुन्दर थी, और जिसे सभी खूब पसन्द करते

थे, क्यों अपने जीवन को इतना तुच्छ समझा कि एक रात भूसे वाली कोठरी से खूंटी पर टंगा रस्सा उतारा, उसका फन्दा बनाया, सभी को सोता छोड़ चुपचाप घर से निकली और पिछवाड़े जाकर बेरी से हवा में छलांग लगा कर अपना प्राणान्त कर लिया।

उसके इस प्रकार फांसी लगा लेने पर गांव वालों ने जो कुछ समझा था वह यह था कि वह बाल-विधवा थी और उसका इस संसार में कोई नहीं था; मेरे ननिहाल वाले उससे रात दिन काम लेते थे, उसे हर समय डांटते रहते थे, ठोकरें लगाते थे। मेरे ननिहाल वालों के उत्पीड़न से तंग आकर और अपने अकेलेपन से उकता कर उस बेचारी ने मृत्यु का वरण किया था। ...पर आज जब मैं सभी सूत्र जोड़ती हूं तो मुझे स्पष्ट दिखाई देता है कि लोगों की इन बातों में लेशमात्र सच्चाई नहीं थी। असल में बात कुछ और ही थी और उस बात को कोई व्यक्ति आसानी से जान ही नहीं सकता था।

आज बारह साल बाद जब मैं अपनी स्मृतियों के रंगों से मग्गो मौसी की आकृति बनाती हूं तो मेरे सामने एक ऐसी लड़की का चेहरा आ जाता है जो बेहद खूबसूरत, चंचल, हंसमुख, ईश्वर का भजन कीर्त्तन और नित्य-नियम करने वाली तथा चौबीस घण्टे काम में व्यस्त रहने वाली थी। वह बाल विधवा थी। उसकी मां ने उसका ब्याह उस आयु में कर दिया था जो लड़कियों की गुड्डे-गुड़ियों से खेलने की उम्र होती है। और जब विवाह के चार पांच साल वह ससुराल जाने योग्य हुई तो सन्देश आया कि उसके पति की मृत्यु हो गई है। वह सफेद डोली में बैठ कर पहली बार ससुराल गई थी। और सात-आठ दिनों के बाद ही मैके लौट आई थी। उसके ससुराल वाले, उसे अशुभ और दुर्भाग्य सूचक मान कर अपने घर रखने को राज़ी नहीं हुए थे। और इस प्रकार वह अपनी मां के कलेजे का एक अमिट दाग बन गई थी।

लेकिन एक दिन यह शूल मिट गया। मां चल बसी। मृत्यु शैया पर मां ने गांव के पंडित से वचन लिया था कि वह साथ जाकर मग्गो मौसी को मेरे ननिहाल छोड़ आएगा।

मेरे ननिहाल वालों और मग्गो की मां में कोई सगा-सम्बन्ध नहीं था। मेरी नानी, बीस वर्ष पहले जगन्नाथ पुरी गई थी और वहां मेरी नानी और मग्गो की मां में मैत्री हो गई थी। अन्तिम समय में मग्गो की मां की आंखों के आगे

सम्भवतः नानी की शक्ल ही घूम रही थी। इस तरह मां की मृत्यु के बाद मग्गो मेरे ननिहाल आ गई थी।

मेरी नानी उस गरीब लड़की से बहुत प्यार करती थी। अपनी बेटियों सरीखा व्यवहार करती थी। मेरी नानी के असीम प्रेम में मग्गो सारे दुःख और अभाव भूल गई। अपने जीवन की सारी कड़ुवाहट भुला कर वह पुनः सोलह-सत्रह वर्ष की उन देहाती लड़कियों की तरह हो गई जो अपने मैके की राजकुमारियां कहलाती हैं।

मग्गो मौसी मुझे अत्यधिक प्यार करती थी। मुझे याद हैं वे दिन। मैं मां के साथ गाँव जाती थी तो मग्गो मौसी मुझे और मां को देख कर फूल की तरह खिल उठती थी। मैं तब छः वर्ष की हो चुकी थी। खूब दौड़ती कूदती थी। लेकिन मग्गो मौसी थी कि मुझे ज़मीन पर पांव तक नहीं रखने देती थी। हर समय मुझे अपनी पीठ पर उठाए घुमाती रहती। गांव के सभी घरों में ले जाती। हर पूछने वाले से कहती, 'यह मेरी भानजी है। मेरे शहर वाले जीजा जी हैं न, वही जो नायब तहसीलदार हैं, यह उन्हीं की बिटिया है।'

'क्या नाम है तेरा बेटी ?' कोई मुझ से पूछता तो मुझ से पहले मग्गो मौसी बोल उठती, 'इस मिसरी की डली का नाम कान्ता है। पर मैं इसे कुन्ती बुलाती हूं। क्यों मेरी भानजी !' यह कह कर वह मेरे गाल चूमने लगती।

मुझे उठाकर वह आमों के बगीचे में ले जाती, हरे भरे खेतों में घुमाती। गन्ने के खेतों से गन्ने की गठरी बांध कर ले आती। स्वयं छील कर और गंडेरियां बना कर चूसने के लिए मुझे देती। मेरी जिद पर खेतों में उड़ते रंग-बिरंगे पक्षियों को पकड़ने के यत्न करती। पीपल के ऊंचे वृक्षों पर मुझे चढ़ा देती और पक्षियों के घौंसले और उनमें पड़े अंडे दिखाती। पलाश के पेड़ों से सुर्ख फूल तोड़ती और फूलों के ढेर पर मुझे बिठा कर बहुत खुश होती। गर्मियों में मुझे सुबह शाम नहलाने के लिए कुएं पर ले जाती। नहला कर वह मुझे ठाकुरद्वारे ले चलती और वहां घण्टियां बजा-बजा कर भजन गा गाकर मेरा दिल बहलाती। जितने दिन हम ननिहाल में रहते दोनों वक्त वह अपने पास बिठा कर मुझे खाना खिलाती और रात को अपने बिस्तर पर सुलाकर, चांद के अन्दर बैठी चरखा-कातती बुढ़िया की कहानियां सुनाती। सच तो यह है कि हम जितने रोज़ गांव रहते, मेरी मां को मेरी तनिक चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं रहती। सभी काम मग्गो मौसी ने अपने ऊपर ले लिए थे।

और उस बार हम मग्गो मौसी को लेने गए थे। मेरी मां कई दिनों से बीमार थी। पिता जी को कई-कई दिन टूर पर बाहर रहना पड़ता था। मेरी देख भाल करने वाला घर में कोई नहीं था—यह सोच कर कि किसी अन्य को नौकर रखने की बजाय मग्गो मौसी को ही शहर ले आते हैं, मैं और पिता जी ननिहाल गए थे।

हमारे आने की वजह जान कर मग्गो मौसी फूली नहीं समाई थी। उसने गांव के हर घर जा कर सुनाया था कि दो-चार दिनों में वह शहर जा रही है।

'कैसे मकान होते हैं शहर में ? कितनी लम्बी गलियां होती हैं ? शहरों में पानी भरने के लिए कुंए होते हैं या नहीं ?' और भी सैंकड़ों बातें थीं जो वह बार-बार मुझ से पूछ रही थी और मैं हंसकर हर बात का उत्तर दे रही थी।

'लेकिन मौसी, हमारे शहर कोई औरत तेरी तरह चादर की 'गिद्दी' नहीं बांधती और न ही तेरे जैसे मैले कपड़े पहनती है। यदि तुम ने शहर चलना है तो एक जोड़ी अच्छे कपड़े बनवा ले।'

'नया जोड़ा क्यों सिलाऊं ? मेरे पास बहुत से अच्छे-अच्छे कपड़े हैं। अरी मेरे पास रेशमी कुर्ते, सुत्थनें, सलवारें और सलमे-सितारे वाले दुपट्टे भी हैं। लेकिन यहां गांव में मैं वह कपड़े नहीं पहन सकती। तू एक बार मुझे शहर ले चल फिर देखना अपनी मौसी का जलवा।'

'तू मुझ से झूठ बोल रही है ? कहां है तेरे पास अच्छे कपड़े ?' मैंने उसे पूछा।

'मेरे सन्दूक में हैं।'

'सन्दूक कहां है ?'

'वह सन्दूक मैंने भूसे वाली कोठरी में रखा हुआ है। कल तुझे दिखाऊंगी।'

अगले रोज़ दोपहर को खाना खाने के बाद मैं और मग्गो मौसी भूसे वाली कोठरी में चली गईं। मेरे कहने पर मौसी ने कबाड़ से भरी 'पड़छत्ती' से लोहे का एक सन्दूक उतारा। सन्दूक खोलते हुए उसकी आंखों से मोटे-मोटे आंसू झरने लगे थे। सन्दूक में उसके शादी के जोड़े थे, वे रेशमी सूट थे जो उसकी मां ने

उसकी विदाई के लिए सिलवाए तो थे लेकिन जिन्हें पहनने की उसकी हसरत पूरी नहीं हुई थी।

उन जोड़ों में एक हरे रंग का था। मेरी ज़िद पर उसने हरे रंग का वह रेशमी जोड़ा पहना और सिर पर उसी रंग का मुक्कैश वाला दुपट्टा ओढ़ लिया। उन कपड़ों में मग्गो मौसी इतनी सुन्दर लग रही थी कि मुझे मां की सुनाई कहानी की सब्ज़ परी याद हो आई थी।

बाहर पानी बरस रहा था और भीतर किवाड़ बन्द कर मग्गो मौसी ऐसे देख रही थी मानो पूछ रही हो, 'इन कपड़ों में मैं तेरे साथ शहर में रह सकती हूं न !'

फिर मग्गो मौसी ने मुझे अपनी गोद में ले लिया और भूसे के ढेर पर बैठ कर पुनः शहर की बातें पूछने लगी। वह मुझ से बार-बार कह रही थी कि एक बार मैं उसे शहर ले चलूं फिर वह मां से भी ज्यादा देखभाल करेगी मेरी।

देर तक हम यही बातें करते रहे और हमें नींद आ गई। हम वहीं भूसे के ढेर पर बैठी-बैठी सो गईं।

पता नहीं मैं कितनी देर सोई रही। और जब मेरी नींद टूटी तो मैंने देखा कोठरी के कोने में खड़ी मग्गो मौसी सिसक-सिसक कर रो रही थी और उसके पास ही, आंखें झुकाए मेरे पिता जी खड़े थे।

मैं उठकर भूसे के ढेर पर खड़ी हो गई। मुझे नींद से उठते देख पिता जी मेरे पास आए।

'मग्गो मौसी क्यों रो रही है, पिता जी।' मैंने पिता जी से पूछा। मेरी आंखों में भी आंसू आ गए थे।

मुझे रोता देख पिता जी ने मुझे भूसे से उठा लिया। क्षण भर रोती हुई मग्गो मौसी की ओर देखा और मेरे आंसू पोंछते हुए वे कोठरी से बाहर आ गए।

उस रात मैं पिता जी के साथ सोई। मग्गो मौसी रात भर भूसे वाली कोठरी में पड़ी रही।

दूसरे रोज अभी हम बिस्तर में ही थे, कि गांव में सनसनी फैल गई कि मग्गो मौसी ने फांसी लगा कर आत्महत्या कर ली है और उसकी लाश हमारे पिछवाड़े, बेर के वृक्ष से लटक रही है।

मैंने अपनी आंखों से मग्गो मौसी की लटकती लाश देखी थी। उसके शरीर पर वही रेशमी जोड़ा था। लेकिन उसकी आंखें पथरा गई थीं, उसकी गर्दन खिंच गई थी, ज़बान लटक गई थी और उसके मुंह से झाग निकल रही थी।

इस घटना को बारह वर्ष हो गए हैं। इन बरसों में मुझे मग्गो मौसी को भूल जाना चाहिए था। लेकिन मैं भूल न सकी। इन बारह वर्षों में मैंने कई बार सोचा था कि आखिर ऐसा क्या हुआ था जो मग्गो मौसी ने अपनी जान दे दी।

पहले माथा मारने पर भी मुझे कुछ समझ नहीं आता था। किन्तु अब मैं समझ सकती हूं। ...और जब से मैं मग्गो मौसी के बलिदान का कारण जान गई हूं, तब से पिता जी के कमरे में नहीं जाती। यदि वे मुझे पास बुलाते हैं तो मेरा सारा शरीर थरथर कांपने लगता है, मेरे कपड़े पसीने से भीग जाते हैं और मुझ पर बेहोशी-सी छाने लगती है।

मैं दिल से चाहती हूं कि मग्गो मौसी को भूल कर पिता जी को माफ कर दूं। मगर लाख चाहने पर भी मैं ऐसा नहीं कर पाई। जब कभी मुझे मग्गो मौसी की शक्ल याद आती है तो पिता जी का शरीर मेरी आंखों के सामने बढ़ने लगता है। उनकी देह फैलती ही जाती है और फिर पिता जी बेर के उस वृक्ष में बदल जाते हैं जो मेरे ननिहाल के पिछवाड़े में खड़ा है। फिर मेरी आंखों में उस वृक्ष से लटकती सत्रह अठारह साल की एक लड़की की लाश घूम जाती है जो बहती हवा में झूल रही है। उस लाश का चेहरा कभी मग्गो मौसी जैसा, कभी मुझ जैसा और कभी दूसरी लड़कियों जैसा होता जाता है। ...फिर अगले ही क्षण मेरा जिस्म ठंडा पड़ने लगता है। □

दूध ! लहू ! ज़हर !

दूध !

लहू !

ज़हर !

माताओं की पुष्ट छातियों से फूट-फूट पड़ते चश्में। गायों और भैंसों के थनों से निकली धाराएं ! छल छल छलकते मटके। खनकते कंगन और लौंग के 'लिशकारे'। हजारों-लाखों ठुनकते बच्चे –'अम्मां दुद्‌धु' ! वे आ रहे हैं गोकुल के ग्वाले। हरी भरी पहाड़ियों पर, सूरज की नर्म किरणों पर चलतीं उनकी लम्बी कतारें। ओस से धुले खेतों से वे आ रही हैं नानकियां, सलीमियां, बेगमां ! रंगीन हंसी, बूढ़ी सोचें, हवा के झोंके के साथ खुलते पिछली रात के कई भेद।

दूध आ गया। दूध अमृत है। दूध जीवन है। किन्तु यदि मांओं की छातियां सूख जाएं ? अगर कभी थनों से निकलती धार बन्द हो जाए तो ? तो क्या होगा ?

लहू ! सुर्ख लाल ! नसों में दौड़ता ! कई मस्तियां जगाता। भांति-भांति के लाखों सपने के जाल बुनता। प्रेमिल-संगीत बिखेरता। सैंकड़ों किस्सों-कहानियों का जन्मदाता। शरीर में लहू है तो संसार आकर्षक है। सारी सृष्टि आभामयी है। चांद तारों में सम्मोहन है।

और अगर नसों में दौड़ता यह लहू रुक जाए ?

यदि गर्म-गर्म रक्त जम जाए ? ...तो ? तब क्या होगा ?

बहुत पुरानी बात है कि भोलेनाथ ने विषपान किया था। विद्वान् सुनाते हैं यदि भोलेनाथ ने तब ज़हर न पिया होता तो वह संसार में बिखर जाना था। —और फिर न मनुष्य ने होना था, न पक्षी और न ही कोई अन्य जीव जन्तु। हर ओर ज़हर ही ज़हर होना था, जीवन नहीं।

पर आज मैं सोचता हूं क्या ज़हर का मात्र एक ही घड़ा था जिसे शिवजी ने उस दिन पिया था ? क्या शिव के नीलकण्ठ बन जाने के बाद जहर हमेशा के लिए समाप्त हो गया था ? ...यदि यह सच है तो दूध में जहर क्यों है ? शरीर में दौड़ते रक्त में ज़हर कहां से आया ? क्यों बार-बार शंकर को पुकारने की आवश्यकता पड़ती है कि वे आकर विषपान करें और पुनः नीलकण्ठ बन जाएं।

किन्तु शंकर अब अवतरित नहीं होते।

तो यह ज़हर कौन पिए ? कौन दूध को पवित्र करे ? कौन रोके कि लहू के मटके भर-भर कर गंदी नालियों में मत बहाओ ? अरे मूर्खो ! लहू तो जीवन है और दूध लहू ! हां दूध लहू है।

तो फिर नानकी दूध क्यों नहीं दुहती ? उसकी मटकियां खाली क्यों हैं ?

'नानकी आज भी नहीं आई।' मेरी पत्नी उदासी से कहती है।

'हां ! वह नहीं आई।' मैं उसकी तरफ देखता हूं, ''मूर्ख नानकी कहती है कि दूध में जहर है और वह ज़हर नहीं बेचेगी।''

कितनी भोली है नानकी ! पगला गई है ! अरे नानकी ! तू भी कभी जहर बेच सकती है ? तूने सदा वह अमृत बेचा है जो मेरे बच्चों के शरीर में लहू बन कर दौड़ रहा है। तेरा संबंध तो उन लहलहाते खेतों, कलकल बहते झरनों, और 'मकोल' से पुते घरों से है जहां उगते सूरज की पहली और अस्त होते सूरज की अन्तिम किरणें पल भर विश्राम करती हैं। मेरी नानकियो ! तुम्हें खुदा का वास्ता। यह जुल्म मत कर बैठना। तुम अपने चश्मे फूटने दो। थनों से धार निकाले जायो। और अपने कृतघ्न पुत्रों को माफ कर दो।

'तुम्हें याद है ?' मैं पत्नी से पूछता हूं।

'क्या ?'

'दस रोज पहले जब नानकी दूध देने आई थी ?'

'हां वह सीधी रसोई में चली आई थी।'

'और तुमने उसे डांटते हुए कहा था—परे-परे रह।

'और वह हंसने लगी थी।'

'हां, वह रसोई के बाहर जा कर बैठ गई थी और कहने लगी थी—'रब की कसम, मैं मुसलमान ज़रूर हूं, लेकिन अपवित्र नहीं। मैं तो रोज मुर्गे की पहली वांग पर उठती हूं। दरिया के बहते पानी में नहाती हूं। खुदा का नाम लेती हूं। तब कहीं तुम्हारे घर आती हूं। और तुम ? तुम तो अभी तक नहाई भी नहीं। देवतों की कसम उठाकर कहो कि तुम रात को अपवित्र नहीं हुई... हटो। मुझे मत छूना।' वह तेरी कड़ाही में दूर से दूध उलट रहीं थी और हम सभी 'सुच्ची' नानकी को देखकर हंस रहे थे।'

उसी समय खबरों के लिए मैंने रेडियो ऑन किया। एक अनहोनी हो गई। रेडियो से लहू टपकने लगा। वह लहू बहता गया फैलता गया। भीतर-बाहर हर जगह फैल गया। और तो और हमारे घर की हवा भी लहू के कारण चिपचिपी हो गई। मैं सहम गया। हमारे बच्चे आतंकित हो गए। और तुम। तुमने बच्चों को अपनी बांहों में ले लिया। बाहर रसोई के दरवाज़े के पास बैठी नानकी सिल-पत्थर की तरह खड़ी थी।

रेडियो से लहू निकलता जा रहा था। मुझे लग रहा था, लहू के अनगिनत मटके घरों में, गलियों में, बाजारों में उलटे हो गए हैं। लहू का सैलाब आ गया है। और इस रक्तिम बाढ़ में सैंकड़ों मासूम शकलें, औरतों, मर्दों, लड़के-लड़कियों के शव बह रहे हैं। यह वही लहू था जो कभी दूध था। यह वही लहू था जो कुछ देर पहले सैंकड़ों दिलों में प्यार जगा रहा था, सपने रंग रहा था, संगीत बिखेर रहा था। यह वही लहू था जिसकी बदौलत यहां से सैंकड़ों मील दूर एक हंसते-बसते शहर की गलियों में रौनक थी, खुशियां थीं, महफिलें थीं, जीवन की रुनझुन थी। —पर फिर यकायक चुप्पी छा गई। नीलकंठ के हाथ से ज़हर का घड़ा छूट गया। हर तरफ नाग ही नाग फैल गए। चहुं ओर ज़हर ही ज़हर हो गया।

दूध ज़हर ! लहू ज़हर ! ज़हर ही ज़हर !

"कितने...?"

"सैंकड़ों...नानकी !"

''सैं.. क...ड़ों ?'' नानकी की आंखें बरस पड़ी, ''फिर मुओं ने एक दूसरे को काट खाया है।''

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। मुझे शर्म आ रही थी। नानकी क्षण भर अपने खाली मटके को देखती रही। उसने सिर पर टोकरा उठा लिया और सीढ़ियां उतर गई। गली में दूर तक वह ज़नाना-मर्दाना गालियां निकालती चली गई। उसके बाद वह नहीं आई।

''नानकी आज भी नहीं आई।'' मेरी पत्नी ने खिड़की से बाहर झांक कर कहा।

''हां ! आज पूरे दस दिन हो गए हैं हमें उसके लौंग का लिशकारा, गले में पड़ा चांदी का 'कंठा', लाल तिल्लेदार कुर्त्ता, उसके पांव की फुंदनेदार जूतियां और सिर पर छलकते मटकों वाला टोकरा देखें।''

''आप मानें न मानें। वह डर गई है। उस दिन आपने उसकी दशा देखी थी न। चेहरा कैसा ज़र्द हो गया था उसका।''

यह भी हो सकता है। सम्भव है वह डर गई हो। लेकिन नानकी डरने वाली नहीं। वैसे डरने का कोई कारण भी नहीं था। भला सैंकड़ों मील दूर होने वाली घटना की चिन्ता हममें से किसी को या नानकी को क्यों होने लगी ?

''मेरे दो बेटे थे।'' नानकी ने एक बार रोते हुए बताया था, ''रहीमा और करीमा। उन दोनों को मैंने अपनी छातियों का दूध पिलाया था। अपनी गायों-भैंसों के थनों की धारें कई बार उनके मुंह में सीधी डालीं थी। उन्हें जवान करने के लिए मैंने सैंकड़ों पीरों-फकीरों से दुआयें ली थीं। यह बाईस साल पहले की बात है।''

''हां नानकी मुझे याद है। बाईस साल पहले भी इस अभागी धरती पर सैलाब आया था—लहू का ठाठें मारता सैलाब ! उस बाढ में हजारों-लाखों लोग बह गए थे। उस प्रकोप को हम कभी भुला नहीं पाएंगे। तू अपनी कह नानकी।''

''उसी सैलाब में मेरा रहीमा और करीमा भी डूब गए।'' नानकी सिसक उठी थी।

''खुदा की कसम, मैंने मनों दूध पिलाकर उनके जिस्मों में लहू बनाया

था। वे पांच-पांच हाथ ऊंचे तगड़े जवान थे । मेरे सामने आते तो मुझे दूध उतर आता था, कुर्ता भीग उठता था। वे दंगल करते थे। वैसे जवान मैंने कहीं नहीं देखे।" नानकी ने ठंडी सांस छोड़ी, "पर मेरा सारा दूध व्यर्थ गया। मेरे मटके लहू से भर गए। मेरी ममता सूख गई।" नानकी देर तक सिसकती रही।

'अजीब मुसीबत है।' मेरी पत्नी पुनः खिड़की से झांक कर गली में देख रही है, "अब क्या करूं ? बच्चे दूध के लिए बिलख रहे हैं।"

"मेरी बात मानो।" मैं हंसते हुए पत्नी की तरफ देखता हूं।

'क्या।' वह मेरे पास आकर बैठ जाती है।

"तुम रोज भगवान की पूजा करती हो न ?"

"हां।"

"क्या-क्या मांगती हो उनसे ?"

"आप का सुख, बच्चों का मंगल।"

"आज अपने देवताओं से एक बात और मांगना। प्रार्थना करना कि वे नानकी को मनाएं।"

"हूं...!" मेरी पत्नी कंधे उचका कर उठती है और खिड़की के पास खड़ी हो जाती है। "आप भी अजीब बात करते हैं। हमारे देवी देवता भला कैसे मनाएंगे उसे ! वह तो मुसलमान है।"

मुझे हंसी आती है। सच भी है। नानकी तो अल्लाह की बन्दी ऐ। उसकी कलाई पर चांद तारे का निशान है। वह हर समय रब, खुदा और अल्लाह शब्द मुंह से निकालती रहती है। भला हमारे देवी देवताओं की उस पर क्या धौंस चल सकती है।

"ए सलीमो...?" पत्नी खिड़की से झांककर ज़ोर से आवाज़ देती है। "अरी, नानकी नहीं आई ?"

"न...ही।" दूर गली से सलीमों की आवाज गूंजती है।

"क्यों ? क्यों नहीं आई वह दूध देने ?"

''उसका दिमाग फिर गया है।'' युवा सलीमो की खिलखिलाती आवाज़ फिर गूंजती है। ''वह कहती है, दूध मत बेचो । दूध में लहू है। लहू में जहर है।''

''दूध में लहू है, लहू में जहर है। ज़हर है, ज़हर है ज़हर है।''

सलीमी की ऊंची आवाज़ मेरे कमरे में, दिमाग में गूंज रही है—गूंजती चली जा रही है।

उफ् ! अब शिवशंकर क्यों अवतरित नहीं होते ? यह ज़हर कौन पिएगा ? कौन बनेगा नीलकण्ठ ? अब नानकी कब दूध दुहेगी ! ...कब हमारे घर आएगी ? □

दूसरा जन्म

कुछ देर फड़फड़ा कर बूढ़ा एक अंधेरे कोने में जा बैठा। दीपक की मद्धिम लौ में वह शंकरी को ऐसी कबूतरी नज़रों से देख रहा था मानो बुढ़िया मनुष्य न होकर जंगली बिल्ली हो जो गुर्राती हुई अपने पैने पंजों से उसकी गर्दन दबोचने के लिए उसकी तरफ़ लपक रही हो । लेकिन शंकरी जहां खड़ी थी, वहीं खड़ी रही । क्रोध से जलती आंखें लपटों जैसी प्रतीत हो रही थीं और उसके हाथों में पकड़ी दरांती, सहमी हुई हवा में कांप रही थी ।

"कमजात । तुझे कोढ़ पड़े । कीड़े पड़ें । तेरी चिता जले । किसी पहाड़ी से कूद कर रोज की क्लेश-कथा खत्म क्यों नहीं करता ।" शंकरी उसे लाख-लाख गालियां दे रही थी । लेकिन फिर भी उसके दिल की भड़ास कम नहीं हो रही । इन गालियों का इतना लाभ अवश्य हुआ कि उसका यह इरादा, कि देखते ही दरांती के एक बार से वह उसकी गर्दन धड़ से अलग कर देगी, बदल गया । जब उसने सिमटे-सिकुड़े, भयभीत आंखों से अपनी तरफ देखते बूढ़े को देखा तो दरांती जमीन पर पटक दी ।

"अब कैसे सिल-पत्थर हो गया है ! मानो मुंह में जीभ ही नहीं रही हो । पड़ा रह नासपीटे । भगवान करे तू सुबह सोकर न उठे ।" यह कह कर शंकरी ने अन्तिम बार बूढ़े को जानलेवा नज़रों से देखा और कोठरी से बाहर आकर सांकल चढ़ा दी ।

"हे परमेसर, क्या जरूरत रह गई थी इसकी ? जीना हराम कर दिया है ।" शंकरी दालान में खाट पर पड़ी-पड़ी सोच रही थी । "तब मर जाता तो पीछे नाम रह जाता । पर अब ? अब तो कंधा देने के लिए भी चार आदमी

नहीं मिलेंगे।'' यह सोच कर शंकरी के मुंह का स्वाद कसैला होने लगा और उसकी आंखें भर आईं।

शंकरी का रोना निरर्थक नहीं। उसका रोना सच्चा है। कहां साल भर पहले का शम्भु पंडित और कहां आज का बेशरम, बेगैरत बूढ़ा। वे भी दिन थे जब गली से कोई व्यक्ति ऊंची आवाज़ के साथ नहीं गुज़रता था। गांव के मुसटंडे-शराबी जब इस घर की दहलीज तक पहुंचते तो उनकी जीभ तालु से चिपक जाती। गांव की खिलखिला कर हंसने वालियां जब इस गली में आतीं तो हाथ-लम्बा घूंघट निकाल लेतीं। खेलते, हंगामा करते बच्चे-लड़के बूढ़े के ज़ोर से खांसने से ही भाग कर गन्ने के खेत में जा छुपते।--पर अब ? अब तो किसी को भी तनिक भय नहीं रह गया था। अब तो आंगन में आधी रात के समय भी शंकरी को किसी शराबी का प्रलाप सुनाई देता है। बच्चे जब भी दरवाजे के आगे से गुजरते तो 'ओए-ओए' करते जाते। और औरतों ने इस रास्ते से आना जाना ही छोड़ दिया है। इस हंसते-बसते गांव में शंकरी के लिए हर ओर खण्डहर शेष रह गए हैं। उसका न किसी से कोई लेना देना रहा, न कोई सामाजिक-व्यवहार। वैसे तो वह स्वयं किसी के हां नहीं जाती और यदि जाती तो पति के अपमान, उसकी करतूतें और लोगों की विष बुझी बातें सुन कर उसका जी करता किसी कुएं-तालाब में जाकर डूब मरे। वर्ष भर में बूढ़े की काली करतूतों के कारण उस प्रतिष्ठित घर की इज्जत मिट्टी में मिल गई थी। और तो और शंकरी के एकमात्र दामाद ने भी उसकी बेटी से कह रखा था कि वह चाहे तो काले चोर के हां जा सकती है लेकिन मां बाप के घर जाने का नाम मत लेना।

"कैसी अनहोनी हुई थी ?" शंकरी आंखें पोंछती हुई सोच रही थी, "जाने क्या सोच कर यमराज इस घर से खाली हाथ लौट गए थे ?" शंकरी को साल भर पहले की वह पूर्णिमा याद हो आई जब उसके घर, बाहर भीतर लोग ही लोग थे और भूमि पर पड़ा हुआ उसका बूढ़ा मर रहा था। गोदान हो चुका था। 'गजराती' दान-पुण्य का सामान सम्भालने की सोच रहा था। बाप के पास बैठी ज्ञानो गीता पाठ कर रही थी। सभी लोग बूढ़े का नाम ले लेकर कह रहे थे कि ऐसा धर्मी-कर्मी और मान-मर्यादा वाला मनुष्य न कभी हुआ है, न आगे होगा। सभी की आंखें अचेत पड़े बूढ़े पर जमी हुई थीं। उसे कोई-कोई सांस आ रहा था।...पर अचानक बूढ़े की पथराती आंखों

में नई लौ आ गई। मुंह से बाहर निकली हुई अकड़ी जीभ ओठों पर फिरने लगी। चेहरे पर फैली मुर्दों जैसी ज़र्दी अदृश्य हो गई। और उसकी छाती किसी स्वस्थ मनुष्य की भांति जल्दी जल्दी ऊपर-नीचे होने लगी।

'बूढ़े के प्राण लौट आए हैं।''

''बूढ़े को होश आ गया है।''

''बूढ़ा परलोक से लौट आया है।''

''हे भगवान ! बूढ़ा तो उठ कर बैठ भी गया है !'' और फिर दालान में शोर-सा मच गया। घबरा कर लोग परे-परे होने लगे।

बूढ़ा 'राम-राम' कहता उठ पढ़ा था। 'बहुत देर सोता रहा ! गहरी नींद आ गई थी।''

बूढ़े ने अपने इर्द-गिर्द खड़े लोगों को बड़ी अजीब नज़रों से देखा। ''तुम सब कौन हो ? यहां खड़े क्या कर रहे हो ? जाओ जाओ, यहां कोई तमाशा नहीं हो रहा। हुं...!''

बूढ़े की त्यौरियां देख कर दालान में कुछ देर खुसर-पुसर होती रही और फिर सभी आशंकित हृदय से बाहर चले गए। कमरे के अन्दर केवल शंकरी, शंकरी का दामाद परसो और बेटी ज्ञानो रह गए थे।

''बापू !'' लम्बे अन्तराल के बाद ज्ञानो ने बूढ़े को आवाज़ दी, ''तुम्हें नहीं पता बापू। तेरा दूसरा जन्म हुआ है। तुझे वे परलोक ले गए थे। तुम तो दूसरी दुनिया से लौटे हो, बापू।''

ज्ञानो बोलती जा रही थी, आंसू पौंछती जा रही थी और बूढ़ा उसकी ओर खोयी-खोयी नज़रों से देख रहा था जैसे अपनी लाड़ली बेटी से उसकी तनिक पहचान न हो ! कुछ देर इसी अवस्था में रहने के बाद बूढ़े ने बांहें उठा कर एक अंगड़ाई ली और हवा में उठे अपने उलटे हाथों की उंगलियां देखने लगा। ''सब कुछ यहीं है। इन दस पोरों के इस ओर। इनके आगे तो कुछ भी नहीं।'' यह कहते-कहते बूढ़ा उठ पड़ा। भीतर बैठे शेष तीनों लोगों की जैसे सांसें अटक गईं।

''कहां चले हो ?'' शंकरी ने बूढ़े को दालान की दहलीज़ पार कर के बाहर जाते देख, कांपती आवाज़ में पूछा।

'कहीं नहीं ।' बूढ़े ने आंगन में लगे बबूल के नीचे से आसमान पर चमकता चांद देखते हुए उत्तर दिया, ''अपनी कोठरी में ।''

और फिर वे तीनों दालान के दरवाज़े पर खड़े, बूढ़े की कोठरी की ओर देखते रहे । उनके देखने-देखते कोठरी के किवाड़ बन्द हो गए ।

तीसरे दिन सुवह उस कोठरी से जो बूढ़ा बाहर निकला वह शम्भु पंडित नहीं था, कोई दूसरा ही व्यक्ति था ।

गांव की औरतें गोबर-मिट्टी से फारिग होकर शंकरी के आंगन में जमा हो गई थीं । सभी शंकरी को बूढ़े के दूसरे जन्म पर बधाई दे रही थीं । उससे बार-बार पूछ रही थीं कि बूढ़ा 'उस पार' की क्या-क्या बातें सुनाता है । कैसा है परलोक ? वहां क्या-क्या देखा ? वैतरणी किस प्रकार पार की ? यमराज उसे वापिस कैसे छोड़ गए ? उन्हीं में से एक औरत ने सुनाया कि पंजग्राईं का शम्भु सुनार परसों मर गया ।

'कहीं यमराज को गलती तो नहीं लग गई ।' पुरोहितों की बहू ने ठिठोली की, ''मानो न मानो, बुलावा शम्भु सुनार के नाम का था और यमदूतों ने आ दबोचा शंकरी बुआ के बूढ़े को ।''

'हां, हो सकता है ।' सुग्गी नाईन ने बात का सूत्र जोड़ते हुए कहा, 'नाम का धोखा महतो पटवारी को हो जाता है, तो यमदूत को क्यों नहीं ।'' उसकी बात सुनकर सभी औरतें ठहाके लगाने लगीं ।

पर उनके ठहाकों पर अचानक पाला पड़ गया जब उन्होंने कोठरी का दरवाज़ा खोल कर बूढ़े को अपनी तरफ आते देखा ।

' मैं चलता हूं ।'' बूढ़े ने पास आकर शंकरी से कहा ।

''कहां ।''

''घघवाल ।''

''लेकिन कैसे ?''

''मेला देखने !'' और इससे पहले कि शंकरी उसे रोकती, बूढ़ा नंगे-पैरों घर से बाहर हो गया था ।

○○

नरसिह जी का मेला देख कर बूढ़ा पांचवें रोज घर लौटा था । वह अपनी

कोठरी में रखे संदूक से एक सौ रुपये निकाल कर ले गया था। अब उसकी जेब में मात्र सात-आठ रुपये बचे थे। शेष रुपये मेले में उजाड़ आया था। लेकिन वह अपने लिए केवल एक जोड़ा कपड़े सिला कर लाया था जिसकी कीमत बीस-पच्चीस रुपये से अधिक नहीं थी। बाकी पैसे उसने किस पर खर्च किए थे, इस विषय में मक्खू दसालन ने हंसते हुए, आंखें नचाकर और अपनी कलाइयों में पड़ी रंगबिरंगी चूड़ियां खनकाते हुए, शंकरी को बताया था।

"बुआ! तेरा बुड्ढा तो बड़ा शाहदिल है जहां एक पैसा लगता हो वहां दो खर्च देता है।' शंकरी, दसालन के दंदासे से रंगे ओठों और काजल से कजराई आंखों की तरफ हैरानी से देख रही थी और मक्खू दसालन कलाई में पड़ी चूड़ियां सहलाते हुए सुना रही थी, "मेले में आए सभी लोग तेरे बुड्ढे को देखकर हंसते रहे। शहर से आए कुछ बाबू लोगों ने तेरे बूढ़े के फोटो भी उतारे ...भला यह भी कोई उम्र है बच्चों के साथ हिंडोले में बैठने की। 'पीपनिआं' बजाने की या हर दुकान से मिठाई के दोने ले लेकर चाटने की।...लेकिन एक बात कहूं। बेचारे ने खुद इतना नहीं खाया जितना मेले में आए बच्चों में बांट दिया। मेरे पोते को भी डोलची-भर खिलौने ले दिए और मुझे भी जबरदस्ती यह चूड़ियां पहना दीं।"

मक्खू की बातें सुन कर शंकरी ने माथा पीट लिया। दूसरे दिन ज्ञानो यह कहते हुए नाराज़ होकर ससुराल चली गई कि पराये बच्चों को तो बापू खिलौने लेकर देता है और मेरे बच्चों का नाम तक नहीं लेता।

OO

बूढ़े ने अब नया ढंग सीख लिया। वह रोज सुबह नाश्ता करके घर से निकल जाता और खेतों, जंगलों और नालों में भटकता रहता। दोपहर को घर लौट आता। मक्की की दो-तीन रोटियां खाकर और कुछ आराम करके फिर जूते पहनता और निकल जाता। शाम को अंधेरा पड़ने से पहले नहीं लौटता। कई बार रात रात-भर बाहर रहता।

शंकरी उससे पूछ पूछकर हार गई कि वह कहां जाता है। घर पर क्यों नहीं बैठता। पर वह उसकी किसी बात का जवाब नहीं देता। खीझ कर शंकरी

कभी उ फटकार देती तो वह रोने लगता। वरन् गुमचुप रोटी खाता रहता और उसकी ऊंची-नीची बातें सुनता रहता। उसकी यह हालत देखकर शंकरी को लगता, मानो बूढ़े की आत्मा को किसी चीज़ की तलाश है जो उसे मिल नहीं रही। पर किस की तलाश है इसे? क्यों यह आराम से नहीं बैठता? शंकरी कितना सिर खपाती लेकिन उसे कुछ समझ नहीं आता।

कई बार स्वयं शंकरी ने बूढ़े को चश्मे की रेत पर, नदी के किनारे, पहरों अडोल बैठे, और बहते पानी में तैरती छोटी-छोटी मछलियों को घूरते देखा था। कई बार रात को वह उसे ढूंढने निकलती तो खेत की मेंड पर उसे आसमान पर टकटकी लगाए देखती। दोपहर को वह पशु चराने गए लड़के-लड़कियों के पीछे-पीछे जंगल की ओर चला जाता तथा 'गरनों', बेरों और अमियों से उनकी झोलियां भर देता। उनके साथ हंसता-खेलता और किसी पेड़ की घनी छाया तले या चट्टान के साये में चादर बिछा कर बैठा रहता। बूढ़े की इन हरकतों पर सभी हंसते, "पगला गया है खूसट।"

अब बूढ़े ने एक नया खेल रचाया। वह सुबह सवेरे ही शिवालय वाले पीपल के नीचे जा बैठता और उस रास्ते से स्कूल जाते बच्चों को बतासे देता। उनके पैर छू-छूकर उनसे माफिआं मांगता। कई बार वह उनके बस्ते उठाकर उन्हें स्कूल छोड़ने चल पड़ता। दोपहर को जब छुट्टी हो जाती तो स्कूल के मैदान में खड़े होकर बच्चों पर बतासों, छुहारों और पैसों की बौछारें करता।

पर यह खेल भी ज्यादा दिन नहीं चला। वह बच्चों की संगति से उकता गया। वह बड़ा उदास रहने लगा। शंकरी बड़े चाव से उसके लिए मक्की के 'ढोडे' सेंकती। 'ढोडे' पर मक्खन के पेड़े रखती। लेकिन बूढ़ा एक दो कौर खाकर थाली परे सरका देता। अब वह घर से भी कम ही निकलता। हर समय अपनी कोठरी में पड़ा रहता। जागते-सोते एक ही बात उसकी ज़बान पर रहती, 'कुछ नहीं। कुछ भी नहीं।—इन हाथों के पोरों के बाहर कुछ भी नहीं।"

बेचारी शंकरी कुछ समझ नहीं पाती कि पोरों के बस में क्या है, और बस के बाहर क्या है।

यह धुन बूढ़े पर कई दिन सवार रही। इसके समाप्त होने की देर थी कि बदनामियां, लोगों के कटाक्ष, मारपीट और कई तरह की मुसीबतें शुरू हो गईं।

हालत यहां तक हो गई कि शंकरी को कई-कई रोज़ बूढ़े को रस्सियों से बांध कर कोठरी में बन्द रखना पड़ता।

हुआ यह था कि बूढ़ा अपनी उम्र भूल बैठा और उसने बुढ़ापे में अपना मुंह काला कर लिया।

कहां वह धर्मी-कर्मी बूढ़ा जो मुंह अंधेरे स्नान करके शिवालय जाता था और दो-दो घण्टे आरतियां गाता था, जो किसी गरीब-बेबस को खिलाने से पहले मुंह जुठाता नहीं था, जिसके मुंह से निकली बात को लोग पत्थर पर लकीर मानते थे, जो बड़े-बड़े पेचीदा मुकद्दमों को जजों की तरह निपटा देता था, जो इतना प्रतिष्ठित और रौबदार था कि उसकी आवाज़ सुनकर बड़े-बड़े शोहदों के प्राण सूख जाते थे। - और कहां यह गया गुज़रा, बेहया बेशर्म, नीच, दुष्ट और बेग़ैरत बूढ़ा जो सुबह-सवेरे उठकर तालाब के किनारे घने पीपल पर जा चढ़ता और पत्तों में छिप कर तालाब में नहातीं, औरतों, कंवारी लड़कियों और गांव को बहुओं के नंगे जिस्म देखकर लार टपकाता।...दोपहर को खेतों में खाना लेकर जाती लोगों की औरतों को देखकर खांसता, मुस्कुराता और जीभ बिराता। शाम को ठाकुरों के बगीचे से चोरी-छिपे मोतिए के टहकते फूल तोड़ लाता और कुएं पर पानी लेने आई पनिहारिनों में फूल बांटता फिरता। —और आधी-आधी रात तक गांव की गलियों में चोरों की भांति खिड़कियों-दरवाज़ों से भीतर झांकता रहता और सिसकारियां भरता रहता।

"बूढ़े की मत्त मारी गई है।"

"बूढ़ा पागल हो गया है।"

"बूढ़े को बांध कर रखो शंकरी।"

"इसके गले में रस्सा डाल कर वज़न बांध दो।"

शंकरी माथा पीट लेती। दोहत्थड़ मारती। जो कुछ करने को कहा जाता, वह सब करती। पर बूढ़ा फिर भी बाज़ नहीं आता। और बरसात के उस भीगे दिन, जब घटाओं के कारण दोपहर को ही शाम हो गई थी, बूढ़े ने जो कुछ किया वह सब करते बदमाश भी झिझकते हैं। बारिश में पुरोहिताईन और उसकी बेटी तारो शहर से लौट रही थीं। वे भीगती और कीचड़ से बचने के लिए बाजरे के घने खेतों से गुज़र रही थी कि पेड़ के पीछे छुपे बूढ़े ने हाथ बाहर

निकाला और तारो की बांह पकड़ कर उसे अपनी तरफ खींच लिया। तारो चिल्लाई। पुरोहिताईन ने चिल्ला-चिल्ला कर सारा गांव इकट्ठा कर लिया। लोगों ने पीट पीटकर बूढ़े को अधमरा कर दिया और खटिया पर डालकर उसे शंकरी के आंगन में फेंक आए।

उस दिन के बाद शंकरी किसी को मुंह दिखाने के काबिल न रही। घर से निकलती तो उसे हर तरफ से अशोभनीय बातें, बच्चों की 'ओए-ओए' और लानतें सुनाई देतीं। उसने टक्करें मार कर सिर फोड़ लिया, पीट-पीट कर छाती नीली कर ली, बूढ़े को रस्से से बांधा, पांच-पांच दिन कोठरी से बाहर नहीं आने दिया, दो दो दिन भूखा रखा, चीमटा गर्म करके उसके पांव दाग दिए।—और बूढ़ा! वह सब कुछ बिना 'सी' किए सह गया। लेकिन जब भी कोठरी के किवाड़ खुलते या उसे मौका मिलता, वह घर से भाग जाता।—और फ़िर वही तालाब का किनारा, गांव का वही कुंआ, और आधी रात तक गलियों में घूमते फिरते उसके पैर। शंकरी कितनी रखवाली कर सकती थी उसकी? दुधमुंहे बच्चे की तरह तो उसकी देखभाल की नहीं जा सकती थी।

"हे परमेश्वर! इसे उठा ले!" लोगों की औरतें अपने पतियों की लम्बी आयु की कामना करती हैं, लेकिन शंकरी को अपने पति की मौत मांगना पड़ रही थी। उसे बूढ़े जैसे सुहाग से विधवा होना ज्यादा पसन्द था।

○○

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी।

शंकरी लघुशंका के लिए बाहर निकली तो आकाश पूर्णतः मेघाच्छन्न हो चुका था। कहीं-कहीं बिजली भी चमक रही थी।

वह बिना आहट किए बूढ़े की कोठरी तक गई। सांकल खोल कर उसने धीरे से किवाड़ों को धकेला।

बूढ़ा जमीन पर बिछे बिस्तर पर सो रहा था। ताखचे में जलते दीपक की मद्धिम लौ उसके चेहरे पर पड़ रही थी। इस दशा में प्रेत की तरह निपट अकेले पड़ा देख कर शंकरी को बूढ़े पर बहुत दया आई।

"क्या हो गया है तुझे ! तू कभी ऐसा न था ।" शंकरी के ओंठ काम्प रहे थे । गालों पर आंसू लुढ़क रहे थे । उसका जी हुआ कि आगे बढ़े । उसके समीप जाए । उसे उठा कर पूछे कि उसने कुछ खाया पिया है कि नहीं ।—लेकिन वह दरवाज़े के पास ही खड़ी रही । रोती आंखों से कितनी देर उसे देखती रही । फिर उसने कोठरी की सांकल चढ़ाई और चादर से आंखें पोंछती दालान में आ गई ।

"अच्छा ! जो मालिक की मर्ज़ी !" शंकरी ने मन ही मन कहा और करवट बदल ली ।

बाहर बारिश होने लगी थी ।

○○

रात भर वर्षा होती रही, बादल गरजते रहे । रात भर शंकरी को अजीब-अजीब सपने आते रहे और वह डरती रही । सपने में उसने अपने हाथों पर मेंहदी लगी देखी, सिर पर 'चक' और कलाइयों में 'कलीरे' पड़े दिखाई दिए । फिर उसे अपनी डोली नज़र आई । परिचितों की हंसी सुनाई दी । देवी माता की वह 'ढक्कियां' दिखाई दीं जो एक बार उसने अपने दूल्हे के साथ चढ़ी थीं । उसे मोतिए के फूलों के वे हार दिखे जो वह हर रात उसके लिए लाता था । टूटी हुई वह चूड़ी दिखाई दी जो एक बार उसके पति ने उसकी बांह दबाते-दबाते तोड़ दी थी । उसे वह सूफी की 'सुत्थन' और मुकैश वाला कुर्ता दिखाई दिया जिसे पहन ओढ़ कर वह एक बार पति के साथ शहर गई थी ।

शंकरी जागी तो उसी सपने की किरचें उसकी आंखों में किरकिरा रही थीं । उसका मन हलका और खुश था । उसने दालान में झाड़-बुहार किया और आंगन में हुए कीचड़ में धीरे-धीरे पांव जमाती पशुओं की कोठरी में आ गई । दूध दुह कर गर्म किया, बड़े गिलास में गर्मागर्म दूध डालकर उसमें देसी घी का एक थक्का डाला । अब वह ओठों पर हल्की मुस्कान लिए बूढ़े की कोठरी की तरफ जा रही थी ।

अभी वह बबूल के पेड़ के नीचे ही पहुंची थी कि उसके पैरों से जैसे धरती निकल गई । वह जड़वत कोठरी के किवाड़ों की ओर देख रही थी जिनकी सांकल

खुली हुई थी। वह उन पगचिन्हों को भी घूर रही थी जो कोठरी के दरवाजे से शुरू होकर, आंगन के कीचड़ को पार करते, बाहर गली तक चले गए थे।

'सांकल किसने खोली ? कहां चला गया वह ?' शंकरी कांपते हृदय से कोठरी की ओर बढ़ी।

उसने पैर से दरवाज़े को धकेला।

किवाड़ खुल गए।

बूढ़ा कहीं नहीं गया था। वह वैसे ही चादर तानकर बिस्तर पर पड़ा हुआ था।

शंकरी ने फिर बड़े आश्चर्य से अपने पास ही बने पग चिन्हों को देखा।

वह एक कदम आगे बढ़ी। दरांती वहीं पड़ी थी जहां उसने रात को फेंकी थी। ताक में पड़ा दीया बुझ चुका था। शंकरी ने पैर से दरांती परे सरका दी और आगे हुई।

"उठ! दूध पी ले।" पास जाकर शंकरी ने बूढ़े को पुकारा। लेकिन बूढ़े ने चेहरे से चादर नहीं हटाई।

उसने गिलास नीचे रखा और आहिस्ता से चादर खींच ली। उसकी आंखें फट गईं।

बूढ़ा मर चुका था। उसकी आंखें पथरा गई थीं। उसके चेहरे पर दारुण वेदना के भाव थे। उसके एक हाथ में, जो छाती पर पड़ा था, काले रंग की टूटी हुई चूड़ी थी। दूसरे हाथ में मोतिए के फूलों का मसला हुआ एक गुच्छा था। पास ही सिर के बालों में लगाई जाने वाली एक सूई पड़ी हुई थी। □



Published by the Secretary on behalf of J & K Academy of Art, Culture & Languages, JAMMU
Printed at Rohini Printers, Kot Kishan Chand, JALANDHAR (Pb.)